स्वाध्याय सुधा

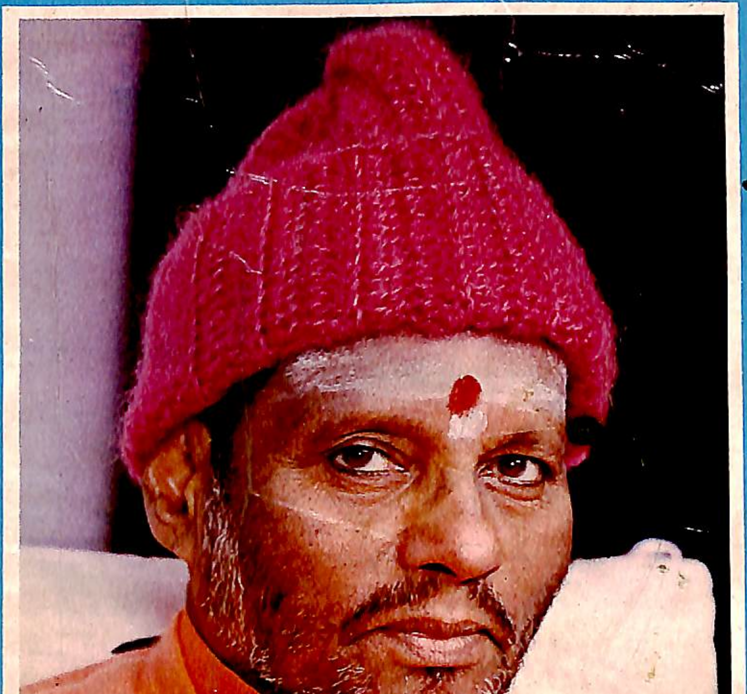

परस्पर देवो भव

स्वाध्याय सुधा

[श्रीगुरुगीता एवं श्रीविष्णुसहस्रनाम सहित]

गुरुदेव सिद्धपीठ
गणेशपुरी

© सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रकाशक :
गुरुदेव सिद्धपीठ
पोष्ट–गणेशपुरी,
जि. थाना (महाराष्ट्र)
पिनकोड ४०१ २०६

नवाँ संस्करण
२१ अक्तूबर, १९८३

मुद्रक :
प्र. पु. भागवत
मौज प्रिंटिंग ब्यूरो
खटाववाडी गिरगाव
बम्बई ४०० ००४

मूल्य
रु. ८·००

अनुक्रम

प्रथम खण्ड

स्वाध्याय योग	...	...	५
श्रीगुरुपादुकापंचकम्	...	...	२०
श्रीगुरुगीता	...	...	२१
श्रीअवधूतस्तोत्रम्	...	...	३९
प्रार्थना	...	...	४०
सद्गुरु की आरती	...	...	४१
श्रीविष्णुसहस्रनाम	...	...	४३
श्रीशिवमहिम्नः स्तोत्रम्	...	...	५८
शिवमानसपूजा	...	...	६५
चर्पटपञ्जरिकास्तोत्रम्	...	...	६६
अन्नपूर्णास्तोत्रम्	...	...	६८
चन्द्रशेखराष्टकम्	...	...	७०
द्वादशपञ्जरिकास्तोत्रम्	...	...	७२
निर्वाणषट्कम्	...	...	७३
गीता-महात्म्यम्	...	...	७४
सायंप्रातः की आरती	...	...	७८
भजन	...	...	८५
ज्योत से ज्योत जगावो	...	...	८५
भजन एवं मन्त्र	...	...	८७
शिव आरती	...	...	८९
आरती लीजो	...	...	९१

द्वितीय खण्ड

(कुछ स्तोत्रों एवं मन्त्रों का अनुवाद)

श्रीगुरु	...	...	९५
श्रीगुरुपादुकापंचकम्	...	...	९६
श्रीगुरुगीता	...	...	९७
श्रीअवधूतस्तोत्रम्	...	...	११७
प्रार्थना	...	...	११९
शिवमहिम्नस्तोत्र	...	...	१२०
शिवमानसपूजा	...	...	१३०
सायंप्रातः की आरती	...	...	१३२
उपनिषद् मन्त्र	...	...	१३७

स्वाध्याय योग

स्वाध्याय में वस्तुतः स्वात्मा का ही अध्ययन होता है। श्रद्धा, प्रेम, भावना के साथ परम उत्साह से किया जाने वाला स्वाध्याय इच्छित फल प्रदान करने-वाला होता है। अनादिकाल से लेकर अब तक महापुरुष, ज्ञानी, मार्गदर्शक, आचार्य, सिद्ध आदि स्वाध्याय की उपासना करते आये हैं। स्वाध्याय परम सम्माननीय और सत्कार से नित्यप्रति नियमित समयानुसारेण पूजित है। स्वाध्याय मानवमात्र की एक अति उत्तम योगोपासना है जो अन्तःकरण को पवित्र बनाने में पूर्ण सामर्थ्यवान् है। पूर्वकालीन अत्यन्त सम्माननीय, महान् शक्तिशाली, सामर्थ्यशाली महापुरुषों ने भी स्वाध्याय का आचार पाला और अन्य सबको भी स्वाध्याय करने के लिए प्रेरित किया।

स्वाध्याय की महिमा साधारण जन जान नहीं सकता। स्वयं न करने वाले तथा औरों को कहने वाले पंडित भी इसकी महिमा को नहीं जानते। पिछड़े हुए होने पर भी अपने को आगे गया हुआ समझने वाले नवसुधारक भी स्वाध्याय की महिमा-गरिमा तथा फलदायिनी शक्ति से अपरिचित हैं। बुद्धिमान कहलाने वाले कई ऐसे मूढ़ भी हैं, जो इतना समय स्वाध्याय में खर्च करना व्यर्थ, यों कहें अपव्यय समझते हैं। कई उदरपोषक महापंडित इसे निकाम अर्थात् बेकार समझते हैं। धर्म को मूढ़ता, अन्धविश्वास तथा पुराणपंथता मानने वाले, ईश्वर में प्रेमरहित एवं भगवान के अस्तित्व को मिटाने वाले, जड़ता-बुद्धि के महान अवतार माता-पिता, भाई-बहन, काका-

काकी, मौसी-मौसा, मित्र-सखा, गुरुजनों के प्रति द्वेष रखने वाले ये नरासुर लोग, जिनके हृदय शुष्क हैं, पैसा जिनका देव है, धनोपार्जन जिनका धर्म है, विषयलोलुपता जिनका स्वाध्याय है—प्लास्टिक जाति के नर-नारी नेता हैं, जो स्वाध्याय विषय से पूरे दूर रहकर भी इसकी निन्दा करते हैं और अपने लिए तथा दूसरों के लिए भी अश्रद्धा की भूमि तैयार करने में लग जाते हैं। कुछ तो जहां गीता का पाठ हो रहा हो, सहस्रनाम का स्तवन-अध्ययन चल रहा हो, अपने दोनों हाथों की अंगुलियाँ कानों में डालकर दूर से ही चल देते हैं! कुछ जन जो मुझसे मिलने के लिए आते हैं, सहसा आश्रम के बाहर ही रहकर स्वाध्याय-समाप्ति के बाद भेंट करने आते हैं। आने पर कहते हैं, 'बाबाजी, मैं कब से आया था, आप लोगों का कुछ चलता था, इसलिए बाहर बैठा था।' मैं उत्तर में कह देता हूँ, 'आपने बहुत अच्छा किया। यदि स्वाध्याय की कुछ मंत्र-ध्वनि आपके कानों में पड़ जाती तो आपके अन्तःकरण का मैल बिगड़ जाने की बहुत संभावना थी!'

आश्रम में श्रीगुरुदेव की मन्त्र द्वारा नियमित आरती, प्रातःकाल विष्णुसहस्रनाम की धुन, अपराह्न में श्रीमद्भगवद्गीता का पाठ, संध्याकाल में पुनः आरती एवं रात्रि के पूर्व प्रहर में महिम्नस्तोत्र आदि होता है। कभी कुछ हरिचर्चा तथा ज्ञानचर्चा भी होती है।[1] उक्त कार्यक्रम नियमित समय में आदर-सम्मान-पूर्वक संगीत के साथ होते रहते हैं। इस स्वाध्याय में जो अज्ञानी चतुर हैं, वे ऊबते रहते हैं। मशालची के, जो दूसरों को प्रकाश दिखाता है, लेकिन स्वयं अँधेरे में रहता है, गुरुभाई पंडित उठ जाते हैं। योगाचार्य की डिग्री वाले, योगीश्वर की पदवी के पात्रभूत चतुर सुजान भी मूढ़तावश कहो, अज्ञानवश कहो अथवा जड़तावश कहो, इस स्वाध्याय की धुन से इतना डरते हैं मानो उनकी योगी पदवी के लिये यह कोई कमतर बात है, मानो उनका योगासन ही छिना जा रहा है। अथवा उनके स्वाध्याय करने पर जैसे सब उनके योगी होने

---

१. आजकल सुबह 'श्रीगुरुपादुकापंचकम्' स्तोत्र एवं श्रीगुरुगीता का पाठ होता है। तदनन्तर 'श्रीकृष्ण गोविंद हरे मुरारे...' की धुन होती है। ग्यारह बजे पंचाक्षरी मंत्र की धुन और तदुपरान्त दोपहर की आरती होती है। अपराह्न में 'श्रीविष्णुसहस्रनाम' का पाठ होता है। रात को श्रीशिवमहिम्न स्तोत्र के पाठ के उपरान्त 'हरेराम हरेकृष्ण' की धुन होती है।

में सन्देह करेंगे! साथ ही वे यह भी कहते हैं कि आश्रम बहुत अच्छा है, योगियों को निद्रा लेते रहने के लिए ठीक-ठाक है। अगर तीन बजे उठने और स्वाध्याय करने की खट-खट न हो तो गाँवदेवी का 'श्री गुरुदेव आश्रम'[1] बहुत अच्छा है। कुछ स्वामी महात्मा ऐसा भी कहते हैं—'क्या जल्दी उठना, चार बार स्वाध्याय करना, पुनः शाम को जल्दी सोना, इसमें ध्यान-भजन के लिए समय नहीं मिलता, एकान्त में रह पायें तो अच्छा है, चार घण्टे स्वाध्याय करके थक जाते हैं।'—तो बाबाजी लोग, आप एकान्त में सोते रहेंगे क्या?

'स्वाध्यायान्मा प्रमदः'—स्वाध्याय में प्रमाद मत करो, स्वाध्याय को भूलो नहीं। सूर्य-चन्द्रवत् स्वाध्याय करो, ऐसा ऋषियों का कहना है। पूज्य बापूजी प्रार्थना अथवा स्वाध्याय नियमपूर्वक, बडी सावधानी से अचूक करते थे। स्वाध्याय सर्वांगपूर्ण, सर्वफलप्रद एक योग है। दस-बीस आसन और कुछ क्रियाएँ जानने वाले, किंचित् प्राणायाम के नियमों को जानने वाले, अपूर्ण होने पर भी पूर्ण कहलाने वाले इस पूर्णफलदायी स्वाध्याय महायोग को कैसे जान सकते हैं?

सुबह का स्वाध्याय लगभग सवा-डेढ़ घण्टे का होता है। स्वाध्याय में सब लोग निर्मल जगह पर शुचि आसन पर निश्चिन्त, बिना हिले-डुले, इधर उधर न ताकते हुए सिद्धासन, पद्मासन अथवा सुखासन मुद्रा में बैठते हैं। यह आसनों की सिद्धि नहीं है क्या? इस सिद्धि की ओर योगियों का तथा अन्यों का लक्ष्य क्यों नहीं जाता? इस स्वाध्याय में सर्वप्रथम एक छोटी-सी धुन होती है:

नारायण नारायण जय गोविंद हरे।
नारायण नारायण जय गोपाल हरे॥

यह धुन परम मांगलिक है। मंगल वह है जो सर्व अशुभों का नाश करके पूर्ण शुभ की प्राप्ति कराता है। नामस्मरण का बड़ा महत्त्व है:

अशुभानि निराचष्टे तनोति शुभसंततिम्।
स्मृतिमात्रेण यत्पुंसां ब्रह्म तन्मंगलं परम्॥
अतिकल्याणरूपत्वान्नित्यकल्याणसंश्रयात्।
स्मर्तॄणां वरदत्वाच्च ब्रह्म तन्मंगलं विदुः॥

---

१. 'श्रीगुरुदेव आश्रम' का नाम अब 'गुरुदेव सिद्धपीठ' हो गया है।

अर्थात् 'जो स्मरणमात्र से पुरुषों के अशुभ-अमंगल दूर कर देता है और कल्याण परम्परा का विस्तार करता है, वह ब्रह्म परम मंगलरूप है। अत्यन्त कल्याणरूप होने से, नित्यकल्याणधाम होने से और स्मरण करनेवालों को वर देने वाला होने से तत्त्वज्ञानी उस ब्रह्म को मंगलरूप जानते हैं।' ऐसी परममंगलरूपिणी, नारायणनामस्वरूपिणी धुन का जो वियोगी (योगविहीन पुरुष) असम्मान करते हैं और अशुभनाश होने के भय से दूर भाग जाते हैं, उन न जाने हुए ज्ञानी पंडितों के व्यवहार से बुद्धिमानों को आश्चर्य नहीं होगा क्या! उस योगकारिणी धुन के अनन्तर सहस्रनाम प्रारम्भ होता है। इस छन्दोबद्ध स्तवन को सभी एक स्वर से सब मिलकर गाते हैं। दाहिने हाथ में पुस्तक, बायाँ हाथ घुटने पर चिन्मुद्रा में रखा हुआ, दोनों आँखों में मंत्र का अचूक दर्शन, दोनों कर्णों में आस-पास के लोगों की तथा अपनी नामोच्चार ध्वनि का संयुक्त श्रवण, यह सब योग नहीं है क्या? इस स्वाध्याय में आसन है, मुद्रा है, मंत्र को देखना त्राटक है, मन्त्र पर लक्ष्य रखना ध्यान है। चित्त की सारी वृत्तियाँ जब मंत्र पढ़ने में, सुनने में, मन्त्रलक्ष्य में पूर्ण समा जाती हैं तब कितना उच्चकोटि का स्वाध्याय-ध्यान होता है, उसे वेदान्ती और योगी क्यों नहीं जानते?

कुछ लोग ऐसा भी कहते हैं कि स्वाध्याय विज्ञान नहीं, ज्ञान नहीं। इसमें दोनों हैं, केवल जानने वालों में जानकारी का ज्ञान नहीं है, कुशाग्रबुद्धि नहीं है, गुरुमुखी बोध नहीं है, अन्तःकरण में शास्त्रकृपा नहीं है। धुन के बाद स्वाध्याय का प्रथम मंत्र है :

नमोऽस्त्वनन्ताय सहस्रमूर्तये सहस्रपादाऽक्षिशिरोरुबाहवे।
सहस्रनाम्ने पुरुषाय शाश्वते सहस्रकोटीयुगधारिणे नमः॥

अर्थात् 'जो अनंत है, सहस्ररूपाकार है, सहस्र चरण, सहस्र नेत्र, सहस्र शिर, सहस्र ऊरु तथा सहस्र भुजाओंवाला है, जिसके सहस्र नाम हैं और जो सहस्र कोटि युगों को धारण करता है, उस शाश्वत पुरुष को नमस्कार है।' जो पूर्ण व्यापक, निराकार, अव्यक्त, ब्रह्मपुरुष सहस्र मूर्तियों में अभिव्यक्त हो रहा है, क्या उसका स्तवन ज्ञान नहीं, विज्ञान नहीं? यही आध्यात्मिक विद्या का ज्ञान और विज्ञान है। जो अनन्त सत्ता अनन्त रूपों में अपनी अभिव्यक्ति कर रही है, उसी अनन्त के इस निःसीम स्वरूप को जानने की जिज्ञासा लेकर भौतिक

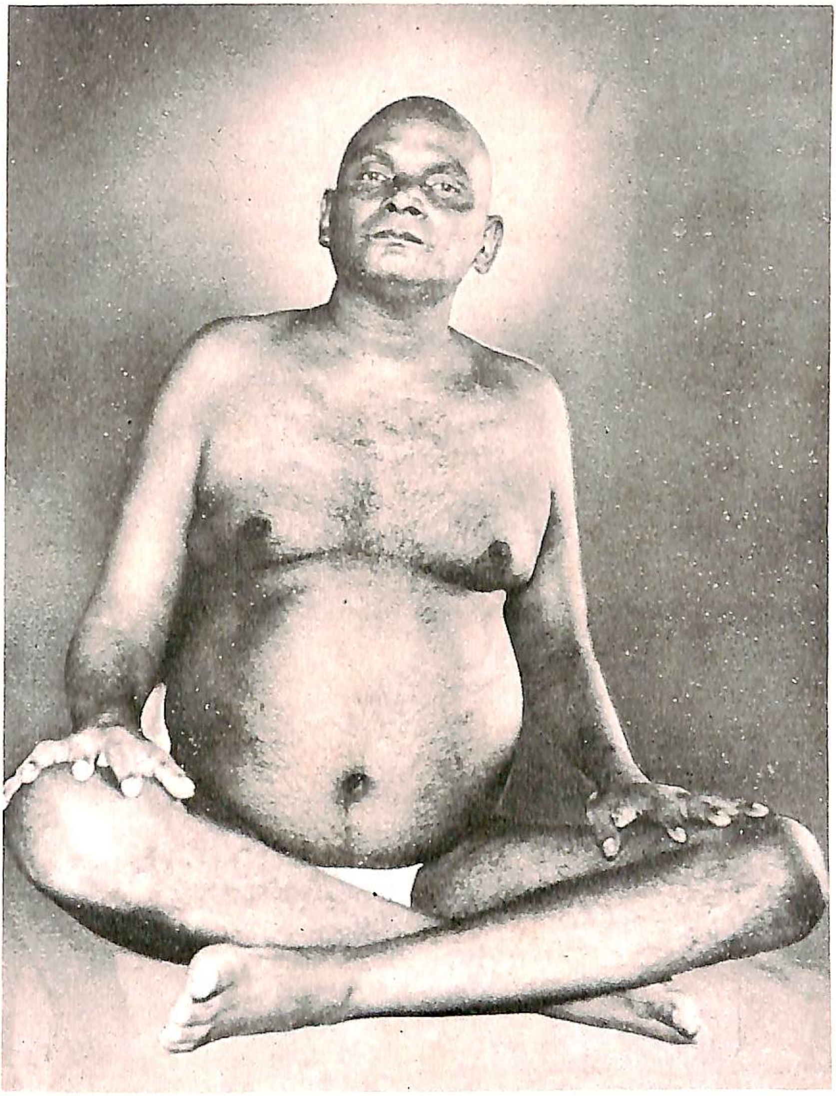

भगवान नित्यानंद

स्वामी मुक्तानंद परमहंस

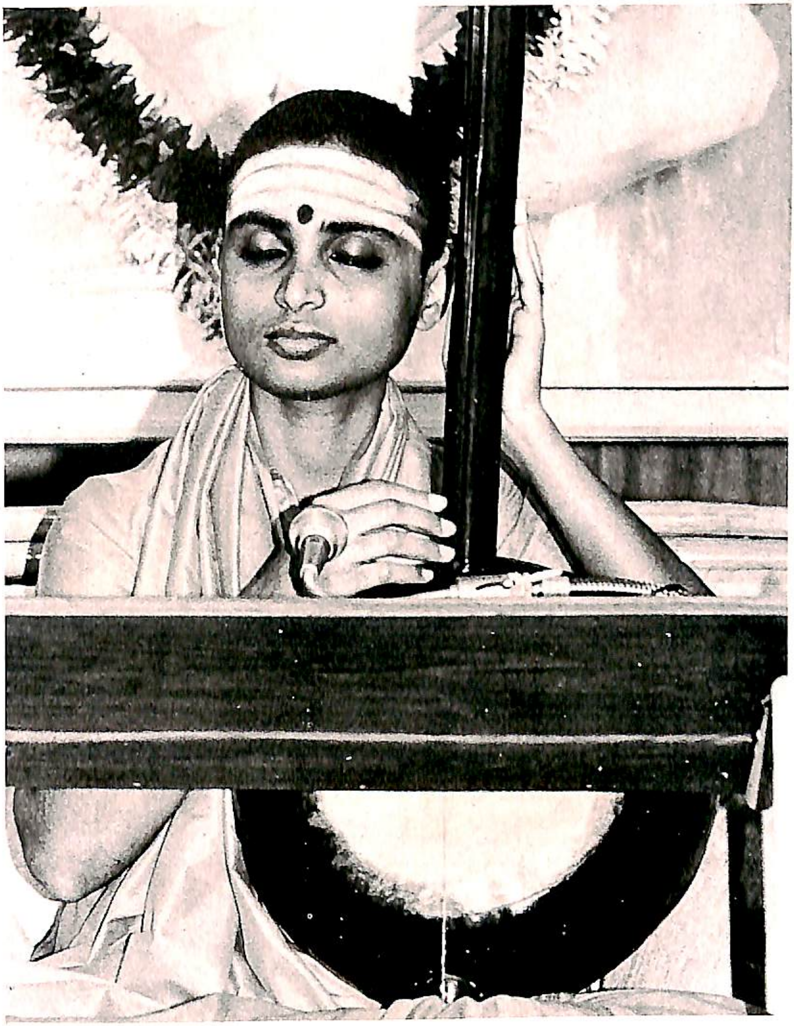

गुरुमाई चिद्विलासानंद

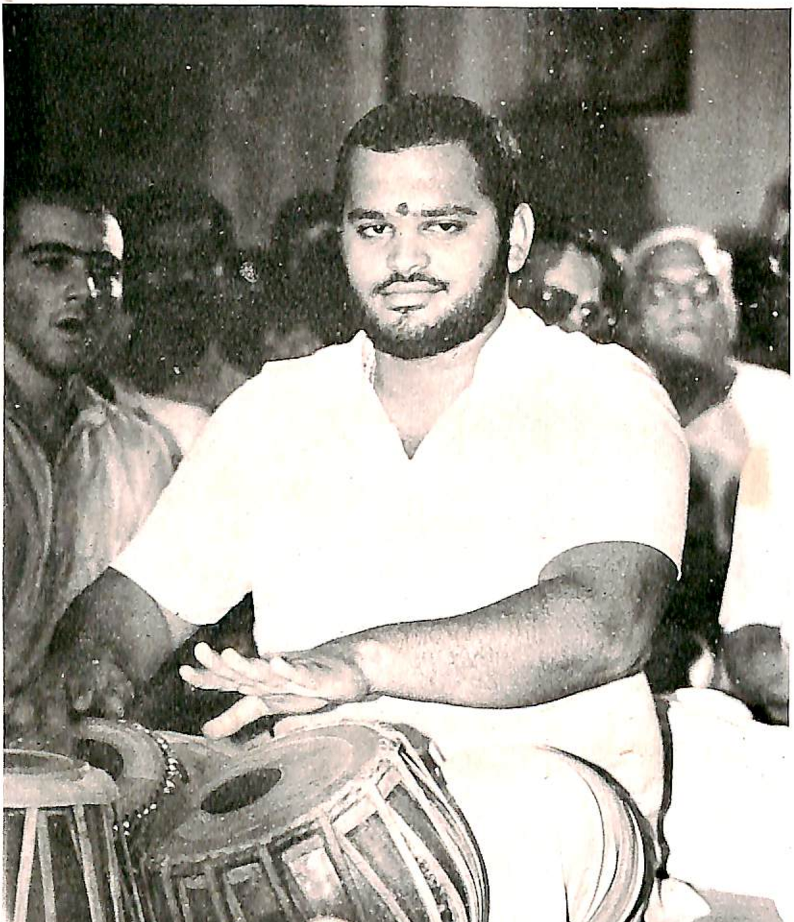

गुरुदेव नित्यानंद

विज्ञान भी अपने कदम बढ़ा रहा है। धरणी से लेकर शिव-पर्यंत जो अनन्त लोक और अनन्त आत्माओं का अनुभूति-जगत फैला हुआ है, उसी के किंचित् अंश को जानने का प्रयत्न आज का भौतिक विज्ञान भी कर रहा है। इसलिये ज्ञान भी वही है, विज्ञान भी वही है और भौतिक विज्ञान भी वही है। पृथ्वी, आकाश और अन्तरिक्ष भगवान विष्णु के ही चरण हैं जहाँ मनुष्य अपनी प्रज्ञा-दृष्टि को ले जाने का प्रयत्न कर रहा है। इसलिए आगन्तुक चाहे अज्ञानी हों अथवा विज्ञ जन, पुरातन हों अथवा आधुनिक, गरीब हों अथवा अमीर, अनास्थावादी हों या आस्थाशील—जो स्वाध्याय में प्रेम नहीं रखते, बल्कि उससे द्वेष रखते हैं, वे अभी बहुत पीछे छूटे हुए हैं, उन्हें अभी बहुत चलना बाकी है। योग के मार्ग में जो स्वाध्याय को बन्धन मानते हैं, वे कभी मुक्त नहीं हैं और न हो सकते हैं।

'नमोऽस्त्वनन्ताय' के बाद अन्य मंत्र है :

ॐ नमः शिवाय गुरवे सच्चिदानंदमूर्तये ।
निष्प्रपंचाय शान्ताय निरालम्बाय तेजसे ॥

यह मंत्र, जिसे 'ॐ नमः शिवाय' कह कर पुकारा जाता है, स्मरण किया जाता है, अथवा जिससे मिलने की बात करने की भाषा भी 'ॐ नमः शिवाय' है—क्या है ? कौन है जिससे सम्भाषण करने के लिए, जिसका स्तवन करने के लिए सृष्टि के आरंभ से लेकर अब तक अनेक काव्य रचे गये, अनेक स्तोत्रों का प्रादुर्भाव हुआ ? शेषनाग अपने सहस्र सिरों को उठाये अपनी सहस्र जिह्वाओं से जिसका गान करता है, सरस्वती वक्ष पर वीणा धारे हर पल जिसकी स्तुति करती है, वह शिवरूप परम तत्त्व क्या है ? हम जिनकी 'ॐ नमः शिवाय' कह कर वन्दना करते हैं, वे गुरुरूप सर्वोत्तम हैं, सच्चिदानंदमूर्ति हैं। सत-चित्-आनंद उनका मूर्त स्वरूप है। 'सत्' उसका नाम है जो सर्व देश, सर्व काल और सर्व वस्तुओं में समान रूप से व्याप्त है। आत्मतत्त्व सर्व वस्तुओं में पूर्ण व्यापक है, वह सबका आधार है। जो कोई भी वस्तु भासमान होती है, वह परमात्मा के 'सत्' में आधारित है। बिना आधार के कोई भी वस्तु अस्तित्व में नहीं है। जैसे समस्त आभूषणों का आधार सुवर्ण है, वस्त्रादि का आधार कपास है वैसे ही परमात्मा समस्त विश्वाडम्बर का आधार है। वह आत्मतत्त्व शिवात्मगुरु जगत के उदय, स्थिति

और लय का परम आधार है। परमात्मा चित-रूप है। चित् अर्थात् चिति सर्वदा, सर्वकाल, सर्वदेश में सर्व वस्तुओं को 'इदम्' कहकर प्रकाशित करती है। वस्तुतः सर्व देश, काल, पदार्थ में भासने वाला तत्त्व चिति ही है। यह चिति तत्त्व अग्नि का प्रकाश, सूर्य-चंद्र का प्रकाश, जगत की समस्त ज्योतियों की आधारभूत ज्योति होने से 'चिति' कहलाता है।

सच्चिदानन्द के आनन्दरूप तत्त्व से ही सर्व जगत की उत्पत्ति, स्थिति और लय है। वस्तुतः विचार करके देखें तो जगत के समस्त व्यवहार आनन्द के द्योतक हैं; आनन्द की प्राप्ति के लिए हैं। सर्व कर्म, सर्व व्यवहार, सर्व धर्म— यह सब कुछ जाति-संग्रह के लिए नहीं हैं, अपितु आनन्द की अनुभूति के लिए है। यदि कोई पूछे कि जीवात्मा सभी में आनन्द ही क्यों चाहता है तो मैं कहूँगा कि परमात्मा अथवा अन्तरात्मा स्वयं आनन्दस्वरूप है, इसलिये। 'सच्चिदानन्दमूर्ति' भगवान में हम इसी सत्-चित्-आनन्दरूप परमेश्वर की उपासना करते हैं। सर्व में आत्मरूप से रहने वाले, प्रेम के आश्रयभूत, परमानन्दमय, प्रपञ्चरहित, क्षोभरहित, 'निष्प्रपञ्चाय शान्ताय', आलम्बन-रहित, 'निरालम्बाय', होकर भी सर्व के अवलम्ब अथवा अधिष्ठाता, परम तेजोरूप, 'तेजसे', परमप्रकाशमय—आँखों में रहकर आँखों के प्रकाश, जिह्वा-कर्ण-नासिका आदि सर्वेन्द्रियों में रहकर सर्वेन्द्रियों के विषयों को प्रकाशित करनेवाले वे प्रभु यावन्मात्र जगत को अन्तर्बाह्य रूप से उद्भासित करने वाले हैं। इस प्रश्न का उदित होना क्या ज्ञान-विज्ञान नहीं है! जो चित् जगत का मूल है, सच्चिदानन्द आत्मा है—उस मूलस्वरूप में जीवात्मा को ले जाने का कार्य नित्य-आनन्दपूर्ण श्रीगुरुदेव करते हैं। जो चितिशक्ति संकोच के कारण चित्तरूप हो गई है, उसके उस संकोच को हटाकर, समस्त मलावरण को भेदकर पुनः उसे चितिरूप में पहुँचाने का अनुग्रह श्रीगुरु ही करते हैं, उनका यह शिष्योद्धार-रूपी कार्य अपने आप में पूरी एक प्रक्रिया होने के कारण इतिहास नहीं है क्या!

श्रीविष्णुसहस्रनाम के आरंभ में युधिष्ठिर शर-शैया पर लेटे हुए भीष्मपितामह से प्रश्न करते हैं :

किमेकं दैवतं लोके किं वाप्येकं परायणम्।
स्तुवन्तः कं कमर्चन्तः प्राप्नुयुर्मानवाः शुभम्॥

को धर्मः सर्वधर्माणां भवतः परमो मतः ।
किं जपन्मुच्यते जन्तुर्जन्मसंसारबन्धनात् ॥

अर्थात् 'लोक में कौनसा वह एक दिव्य तत्त्व है, कौनसा एक पारायण है, किसकी स्तुति करते हुए, किसकी अर्चना करते हुए मानव कल्याण की प्राप्ति कर सकता है? आपके मत में सर्व धर्मों में सर्वश्रेष्ठ धर्म कौनसा है, किसका जप करते हुए प्राणी जन्म और संसार के बन्धन से मुक्त हो सकता है?' जप कौनसा करना चाहिये, ईश्वर कौन है, संसार-सागर की सुदृढ़ नौका कौनसी है? इन सब प्रश्नों के उत्तर में भीष्मपितामह कहते हैं—'जगत के प्रभु, देवाधिदेव, पुरुषोत्तम, सर्वलोकमहेश्वर, लोकाध्यक्ष, सर्व धर्मों के एकमात्र धर्म, महातेज, महातप, महद्-ब्रह्म, पवित्रों में पवित्रतम, मंगलपदार्थों में मंगलतम, देवों के देवाधिदेव, प्राणियों के अव्यय पिता जगन्नाथ भगवान विष्णु के एक सहस्र नामों का पारायण ही सब पापों का विनाशक और संसारसागर से पार ले जाने वाली सुदृढ़ नौका है। जो सहस्रनाम धर्मरूप शास्त्र, मोक्षरूप शान्ति, हृदयस्थ प्रभु का कीर्तन, सर्व रोगों का विनाशक, पूर्ण आरोग्य को प्राप्त कराने वाला, विद्या-बल-कीर्ति बढ़ाने वाला, सर्वात्मभाव की स्थिति में ले जानेवाला है ऐसे परममंगलरूप तत्त्व में भी जिनका चित्त नहीं लगता, जो उसे अपना लक्ष्य नहीं बनाते—इसके विपरीत 'इससे क्या होता है, उससे क्या होता है' कहते रहना, स्वाध्याय-तप से दूर मृत्यु की तरफ उन्मुख, दुःख के निकट बढ़ते जाना और फिर कहना 'हम कितने विद्वान हैं, हमसे सीखो'—यह सब एक बड़ा भ्रम नहीं है क्या? सहस्रनाम में सम्पूर्ण विश्वरूप भगवान का ही पूर्ण ज्ञान होता है, विश्वरूप विश्वात्मा की ही पूजा होती है, विश्वरूप में जड़-चेतनात्मक जो भी कुछ है, उन सबका आदर और सन्मान होता है। प्रातःकाल उठकर एक बार सर्वदिशामय, सर्वमन्त्रमय, सर्वात्मा, सर्ववेदमय, सर्वधर्ममय भगवान को स्वाध्याय रूप से स्मरण करना, पठनरूप से पूजा करना, ज्ञानरूप से अभेदपूर्वक अपनाना कितने आनन्द की बात है, कितना शान्तिमय विचार है, कितना सर्वात्मैक्य है, सर्व में द्वेषरहित स्नेह है! यह जागतिक स्नेह बढ़ाने वाला नहीं है क्या! जब तक परस्पर प्रेम नहीं है, एक दूसरे के प्रति पूर्ण आत्माराम मैत्री नहीं है, ऐसी प्रगतिशीलता का क्या प्रयोजन है! जहाँ प्लास्टिक के हृदय पूरी तरह सूखे हुए हैं, वहाँ सम्पत्ति भी क्या कर सकती है,

ऐसे प्लास्टिक के नरनारियों का धन, मान, डिग्री उन्हें शान्ति देता हो तो भले ही दे, दूसरों को तो वह जड़, रसहीन और परापेक्षित ही लगता है।

भगवान का नाम अमृतमय सुखरूप है। स्वाध्याय करते-करते मनोवृत्ति मंत्रमय बन जाती है, सहज ही एकाग्रता होने लगती है, हृदय अपने लक्ष्य में स्थिर हो जाता है और उस मंत्र के अर्थरूप आनन्दरस का आस्वाद करने लगता है। हृदय की शुष्कता नष्ट हो जाती है, चित्त की चिन्ता मिट जाती है, अप्राप्ति की जलन की अग्नि बुझ जाती है, स्वभावतः एक भावमय प्रेमसमाधि का उदय हो जाता है और अपने आप में तृप्ति की अनुभूति होने लगती है। उसे पता लगता है कि मानव के अन्दर महान शक्ति का एक गुण है, प्रेम का निर्झर है, धैर्य का महान मजबूत किला है, भगवान का देदीप्यमान मन्दिर है और तब वह शान्ति, तृप्ति और पूर्णता की अनुभूति से मस्त हो जाता है। यही स्वाध्याय है।

स्वाध्याय के संदर्भ में एक पक्षी की याद आती है जिसे कौडिल्ला अथवा 'किंगफिशर' कहते हैं। एक ही काल में ध्यान, खाना और स्नान करने वाला एक ही पक्षी जगत में है। वह पक्षी नदी-तीर पर एक झाड़ के कोटर में शान्त-स्थिर बैठकर नदी के पानी में इधर-उधर तैरने वाली छोटी-सी मछली के ध्यान में रहता है। मछली के देखते ही पानी में कूद पड़ता है। मछली पकड़कर खाना, पानी में डूबकर स्नान करना, एकाग्रचित्त हो मछली का ध्यान करना—इस प्रकार एक ही काल में खाना, स्नान और ध्यान क्या पक्षी की होशियारी, महत्ता नहीं है!

जैसा कि आप को बताया कि स्वाध्याय में पहले 'नारायण नारायण जय गोविंद हरे। नारायग नारायण जय गोपाल हरे॥' महामंत्र का मांगलिक घोष होता है। नाम-संकीर्तन का महत्त्व जानने के लिए नारायण ही बनना पड़ेगा। चैतन्य महाप्रभु की चरितावली में नाम की महिमा का पता लगता है। हरिदासजी नाम-माहात्म्य का वर्णन करते हुए कहते हैं : भगवन्नाम का जप तो सर्वकाल में, सर्वस्थानों में, सबके सामने और सब परिस्थितियों में किया जाता है। अन्य मंत्रों को मौनरूप से जपने का माहात्म्य भले ही हो, किन्तु भगवन्नाम का माहात्म्य तो जोरों से उच्चारग करने में ही बताया गया है। भगवन्नाम के उच्चारण में जितना अधिक घोष होगा उसका उतना ही अधिक माहात्म्य होगा, क्योंकि धीरे-धीरे जप करनेवाला तो अकेला अपने आपको ही पावन बना सकता है, किन्तु उच्च स्वर से संकीर्तन करनेवाला सुननेवाले जड़-चेतन सभी को पावन बनाता है :

जपतो हरिनामानि स्थाने शतगुणाधिकः।
आत्मानं च पुनात्युच्चैर्जपन् श्रोतॄन् पुनाति च ॥

चारों तरफ से किया जाने वाला मंत्रघोष मानव को एक दिव्य लोक का बोध कराता है। दस मिनिट तक नामघोष होने के बाद सहस्रनाम आरंभ होता है। सामान्यतः सुबह का यह स्वाध्याय डेढ़ घण्टे में समाप्त हो जाता है! पूर्ण स्थिरता से बैठना, न हिलना, न डुलना, एक हाथ घुटने पर चिन्मुद्रा में, एक हाथ में सहस्रनाम, कान ध्वनि की तरफ, चित्त अचूक पढ़ने में, वाणी पूर्ण रूप से उच्चारण में—यह स्वाध्याय है, आसन भी है, ध्यान भी है, चित्त की एकाग्रता भी है, मंत्र का प्रेम-प्रवाह भी है—क्या आनन्दमय योग है! सहज-सहज ही मानव स्वाध्याय द्वारा परमात्मा के समीप पहुँच सकता है। वस्तुतः विष्णुसहस्रनाम एक महान सार्वभौमिक महाजपयोग है और अमृत रूप है। महाभारत के अन्दर गीता के अनन्तर इसका अवतरण हुआ है। अर्जुन के मोह को नष्ट करने के लिए प्रथम श्रीगीतेश्वरी का प्रादुर्भाव हुआ, अनन्तर धर्मरूप धर्मराज की जिज्ञासा के परिणामस्वरूप सर्व धर्म का फल देनेवाला, सुलभता से किया जानेवाला, सभी को पूर्णरूप से प्रवेश देनेवाला, मूढ़, पंडित, विद्वान, अपढ़, कवि, विद्याहीन, पुण्यात्मा, आबाल-वृद्ध सभी के करने योग्य धर्म का उपदेश भीष्मपितामह ने दिया। भगवान के सहस्रनाम का स्तवन परमोत्कृष्ट धर्म है। यह धर्मरूप, योगरूप, यज्ञरूप है। यह साधनकाल में साधन है और साधनोत्तर काल में पूर्ण परमानन्दमय है। भगवान का नाम भगवान जैसा ही आनन्दरूप है। मधुरों में मधुरतम, मंगलों में मंगलतम भगवान का नाम भगवान के सदृश ही माधुर्यपूर्ण और आनन्दरूप है, आनन्द का भी परमानन्द है। ऐसा '**रामनाम रसखान, मूरख जाको मरम न जाने, पीवत चतुर सुजान**' है। वस्तुतः भगवान जैसे प्रेममय, वैसे नाममय भी हैं। नाम में वे नाम आप ही हैं : '**आदौ भगवान् शब्दराशिः**'। महर्षि भीष्मपितामह ने शर-शैया में शयन करते हुए सर्व जागतिक धर्मों की व्याख्या करते-करते अन्त में परमात्मा के परम धर्मरूप, शान्तिदाता, मोक्षरूप, सहस्रनाम की मंगलमाला बनाकर उसे स्वाध्याय के महत्त्व से सम्पन्न करके युधिष्ठिर को दिया। धर्मराज युधिष्ठिर ने पठन-पाठन करके कृत-कृत्यता प्राप्त की। अद्वैतवादी जगद्गुरु आदिशंकराचार्य ने विष्णुसहस्रनाम पर अपना भाष्य लिखा और जगत में उसका प्रचार किया और कहा कि यह

धर्मरूप है और जपनीय है तथा द्रव्य-देश-काल-नियम-कठिनाई आदि से मुक्त, सुलभता से, प्रेम से सभी के द्वारा इस युग में किया जा सकता है।

बृहन्नारदीयपुराण में कथन है :

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

अर्थात् 'कलियुग में केवल हरिनाम ही है, जीव के लिए अन्य कोई गति नहीं है।' यह सहज-सुलभ साधन है जिसे मनुष्य किसी भी स्थिति में कर सकता है। चरणदास कहते है '**स्वासा माहीं जपे तें दुविधा रहे न कोय।**' कबीरदास ने भी कहा है, '**साँस साँस सुमिरन करौ यह उपाय अति नीक।**' सुलभ साधन होने के कारण ही कलियुग में इसका इतना महत्त्व है। प्रभु का नामस्मरण ही परम गति है। परमगतिरूप सहस्रनाम के पठन से अन्तर-शक्ति जाग्रत हो जाती है। सहस्रनाम के महामंगलमय घोष से वायुमंडल पूर्ण शुद्ध हो जाता है, तथा पूरा परिवेश योगमय बन जाता है। सहस्रनाम प्रेमतत्त्व से पूर्ण होने के कारण उसे पढ़ने से हृदय में एक नशा-सा उदित हो जाता है। संतोषजनक प्रेम का स्रोत बहने लग जाता है। उस प्रेम-स्रोत के हृदय में प्रसरणशील होते ही जीवन परमानन्दमय बन जाता है। जहाँ तक हृदय सूखा है, वहाँ तक सारे संसार के मालिक या शहंशाह होने पर भी जीवन रसहीन और आनंदहीन है। जिसे हृदय की मस्ती और भगवत्प्रेम प्राप्त हैं, वह कंगाल होने पर भी राजा है, फकीर होने पर भी अमीर है।...और यह सब स्वाध्याय से प्राप्त है।

अपराह्न में पौने तीन बजे गीता-पाठ होता है। सामान्यतः यह भी एक घण्टे का है। प्रतिदिन तीन-तीन अध्याय करके पढ़ा जाता है। एक तरफ पुरुष वर्ग बैठता है, दूसरी तरफ माताएँ। संयुक्तरूप से एक स्वर में किया जाता है। जिन्हें संस्कृत भाषा का ज्ञान नहीं है, वे भी नित्य श्रवण से इसका अभ्यास कर लेते हैं, यहाँ तक कि विदेशी जन भी बड़े प्रेम के साथ सहस्रनाम और गीता का पाठ कुछ दिनों के अभ्यास के अनन्तर करने लगते हैं। छोटे-छोटे बच्चे भी उसे आसानी से सीख लेते हैं और फिर यह स्वाध्याय इतना सुलभ हो जाता है कि वे अपने घर में भी उसका पारायण करने लगते हैं। जैसे सहस्रनाम का महत्त्व है, जो नाम शब्द का अतिक्रमण करनेवाला है और शब्दमय भी है : 'शब्दातिगः शब्दसहः' वैसे ही गीता का भी बड़ा माहात्म्य

है। गीतापाठ अन्तःकरण को पवित्र, हृदय को निर्मल बनाता है, बुद्धि में ज्ञान का तरंग फैलाता है। गीता महाज्ञानप्रद, भक्तिप्रद है। गीता मोह को भंग करके, ज्ञान का विकास करके, भेद को नष्ट करके अभेद का स्थापन कर देती है। गीता-ज्ञान हृदय में भगवान का बोध करा देता है, गीता-ज्ञान सर्वत्र परमेश्वर बता देता है। गीता-ज्ञान विश्वपूर्ण विश्वात्मा विष्णु है। ऊपर आकाश, नीचे पृथ्वी तथा मध्य लोक, सकल विश्व के जीवात्मा एक पूर्ण परमात्मा की ही अभिन्न व्याप्ति है—इस प्रकार गीता विश्वरूप का दर्शन कराती है। जीनेवाले का जीवन, मरनेवाले की मृत्यु, रुग्ण का रोग, आरोग्यवान का आरोग्य, पुण्यात्मा का पुण्यभोग, पापात्मा की पापपीड़ा, दरिद्र से लेकर दाता, मानव से लेकर दानवा, भोगी से लेकर योगी, स्वर्ग-नरक, मोक्षनगरी सब कुछ मुझमें ही है, गीता ऐसा आत्मज्ञान कराती है। वस्तुतः जो गीता का निशिदिन श्रवण-पठन करते हैं, वे मनुष्य निःसन्देह देवरूप हैं।

ये शृण्वन्ति पठन्त्येव गीताशास्त्रमहर्निशम् ।
न ते वै मानुषा ज्ञेया देवरूपा न संशयः ॥

गीता दुःख में भी पूर्ण सुख का दर्शन कराती है, दरिद्रता में भी लक्ष्मी का भोग करवाती है, हृदय में ही वैकुण्ठ बताती है। ऐसी माहात्म्यसम्पन्न गीता का स्वाध्याय यदि मानव त्याग देता है तो प्रमादवश वह अपने परम ऐश्वर्यमय ईश्वरीय साम्राज्य का त्याग कर देता है। अमृत का त्याग कर मानो मृत्यु की बाँहों में दौड़ता है। गीता भगवान का हृदय है, उत्तम सार है, अव्यय ज्ञान है, उत्तम स्थान है, परम पद है। गीता परा विद्या ब्रह्मरूपा है।

गंगा गीता च गायत्री सीता सत्या सरस्वती ।
ब्रह्मवल्ली ब्रह्मविद्या त्रिसन्धा मुक्तिगेहिनी ॥

गीता क्या नहीं है! गीता गंगा है, गायत्री है, सीता, सत्या, सावित्री है, ब्रह्मवल्ली, ब्रह्मविद्या है। अस्तु।

स्वाध्याय मानव को महान बनाता है। स्वाध्याय में सभी समान भाव से बैठ सकते हैं। ईश्वर के घर में सभी समान हैं। परमात्मा परमदर्शी है। उसके यहाँ सभी के लिये एक रीति है। शिस्तबद्ध रूप से स्वाध्याय में बैठो, परमात्मभाव से बैठो, आपके पार्श्व में परमात्मा है ऐसा समझकर बैठो। लक्ष्य मंत्र

में, मंत्र लक्ष्य में, स्वर अपने में ही रहने दो, उसे दूर मत जाने दो। चित्त जब भी दूर हो जाता है, तब पागल जैसा बन जाता है, अन्दर जाकर स्वाध्यायरत होता है तो निर्मल बुद्धिवादी बन जाता है। चित्त में चिन्मय को टिकाने के लिए स्वाध्याय करो।

शाम को सुबह की भांति आरती होती है। आरती एक महान सन्माननीय व्रत है। भारत में आरती का बड़ा प्रचलन है। देव-देवता, सुर-नर-राजा आदि सभी आरती के द्वारा अपने प्रियजनों का, हृदयस्थ प्रभु का, आत्मतुल्य गुरुदेव का सम्मान करते हैं। आरती प्रेम और पूजा की एक दिव्य अभिव्यक्ति है, एक महान मंगलकार्य है। आरती में भी सर्वात्मभाव की पूजा होती है। आरती के उपरान्त अल्पाहार के पश्चात् रात्रि के पूर्वारम्भ में शिवमहिम्नस्तोत्र तथा हरे राम, हरे कृष्ण की धुन होती है। महिम्नस्तोत्र भी आह्लाद एवं आनन्द से परिपूर्ण है जिसमें भक्ति, प्रेम, ज्ञान और शक्ति की महिमा है। महादेव के श्मशान-वासी स्वरूप का वर्णन है, जो बाह्य रूप से अमंगल प्रकृति से युक्त पदार्थों के उपभोक्ता होने पर भी परम मांगलिक है। शैवों और वैष्णवों के मतभेद को मिटाने के लिए भगवान विष्णु के द्वारा शिव की पूजा का अत्यन्त सुन्दर वर्णन इस महिम्नस्तोत्र में है जिसमें भगवान विष्णु एक सहस्र कमल पुष्पों से नित्य भगवान शंकर की उपासना करते हैं और एक बार निश्चित पुष्पों में एक पुष्प कम होने पर अपने नेत्रकमल द्वारा फूलों की संख्या पूरी करते हैं।...जो आत्मस्थ भगवान निकट से भी निकटतम हैं और पर से भी परे हैं, उनका स्तवन गंधर्वराज पुष्पदंत ने इस दिव्य स्तोत्र में किया है। यह स्तोत्र देवताओं और मुनियों से पूज्य है, '**सुरवरमुनिपूज्यम्**', स्वर्ग और मोक्ष का हेतु है : '**स्वर्गमोक्षैकहेतुम्**'। अनन्यचित्त होकर जो इस स्तोत्र का पठन-पाठन-स्तवन करता है, वह शिव को प्राप्त करता है। इसमें भगवान के निर्गुणस्वरूप और सगुण महिमा की दिव्य अनुभूति मनुष्य को मिलती है। रात्रि के प्रथम प्रहर में किये जाने वाले इस स्तोत्र से मानव का अन्तःकरण रात्रि में संचरण करनेवाली दूषित शक्तियों से मुक्त होता हुआ विकाररहित होकर शुद्ध तथा अमृतमय बनता है।

इस प्रकार रुचिर स्वर में किया जानेवाला स्वाध्याय ध्यान और ज्ञान का प्रदाता है तथा हृदय को पवित्र बनाता है। यह एक अत्यन्त मांगलिक तत्त्व है। सत्य कहो तो मानव एक अलौकिक, महान उच्च प्रेम, समता, शान्ति की मूर्ति

है। मानव के भीतर सिद्धांत का लक्ष्य पूर्ण होता है। कोई भले ही दार्शनिक हो, वह अपने दर्शन के लक्ष्य को अपने अन्दर बताता है, अपने अन्दर ही देखता है, अपने अन्दर से ही बाहर प्रकट करता है। इसी प्रकार स्वाध्याय का लक्ष्य आपके भीतर है। वह लक्ष्य आपके भावनामय, निष्ठामय, प्रेममय स्वाध्याय को तुरंत देखता है और भीतर से सुनता है। वह अन्दर से आपकी भक्ति, प्रेम, और श्रद्धा का निरीक्षण करता है। जैसे सम्माननीय पुरुषों को मानपत्र दिया जाता है, उनके सन्मुख उनका गुण-गौरव किया जाता है, वैसे ही आप स्वाध्याय के द्वारा हृदयस्थ भगवान आत्माराम का सम्मान करते हैं। भगवान आपके अत्यन्त निकट आत्मरूप में अवस्थित हैं, सावधानी से उनका स्तवन करो। मर्यादा अमर्यादा नहीं होनी चाहिये। ग्रंथ को सन्मानपूर्वक हाथ में पकड़ो, शुचितया शांति से आसनस्थ रहो, चित्त में मन्त्रों के लक्ष्य की भावना पूर्ण हो, सुस्वर मधुरता से गाओ, वे प्रभु आपके अन्दर बड़े प्रेम से आपके एक-एक शब्द का, भावना का श्रवण करते हैं। उन्हें अपने से दूर मत मानो। उन सर्वव्यापी परमात्मा को अपने से दूर देखते-देखते आप उनसे परे हो गये हैं। वे आपके अत्यन्त निकट हैं, आपकी साँसों की अपेक्षा भी निकटतम हैं, उन निकटतम को दूर मत समझो। प्रियजनो, हृदय के राम जब तक प्रसन्न नहीं, तब तक और कोई भी प्रसन्न नहीं होता। जब अन्दर के श्याम प्रसन्न हों, तब सब प्रसन्न हो जाते हैं। स्वाध्याय से पूर्ण आपका अन्तर तृप्त, पवित्र और निर्मल मानसिक चिन्तन से युक्त बन जाता है। जब आपका चित्त स्वाध्यायमय बन जायेगा तब आप सुख से सोयेंगे, सुख से जागेंगे, हँस-हँस कर उल्लासमय जीवन बितायेंगे। मौत का भय नहीं होगा और न जन्म की चिन्ता ही। नित्यप्रति भाव-समाधि में झूलते रहेंगे, व्यवहार भी कुशलतापूर्ण करेंगे, पढ़ाई भी प्रेम से पूरी कर लेंगे, गृहस्थी में भी प्रपंच नहीं मालूम होगा। संसार महास्वर्गमय है, ऐसा भासमान होगा। स्वाध्याय का ऐसा महाप्रताप है।

स्वाध्याय तप, स्वाध्याय आत्मा, स्वाध्याय धन, स्वाध्याय स्वजन है। सर्वत्र व्यापक आत्मदेव ही आप में व्याप्त हैं जो स्वाध्याय का लक्ष्य है। यह आत्मदेव जब तक अनुभूति में नहीं आता, तब तक अनुभवी की अनुभूति में अनुमान अथवा सन्देह न करते हुए पूर्ण श्रद्धा रखो, एक दिन स्वयं ही यह आप में स्फुरणशील होकर आपकी अनुभूति में आ जायेगा। जैसे समुद्र के बीच में व्यक्ति सर्वत्र पानी ही पानी देखता है, डूबने से भी पानी और तैरने

से भी पानी, उन्मीलन में भी पानी और निमीलन में भी पानी, ऐसे ही आपकी अनुभूति में भी यही प्रतीति होगी कि जगत भी आत्मा है, जनता भी आत्मा है, अन्तर में भी आत्मा है, बाह्य देह-प्राणादि में भी आत्मा है, आत्मा ही केवल सत्यं, शिवं, सुन्दरम् है।

इतो न किञ्चित् परतो न किञ्चित्
यतो यतो यामि ततो न किञ्चित्।
विचार्य पश्यामि जगन्न किञ्चित्
स्वात्मावबोधात् अधिकं न किञ्चित्॥

अर्थात् 'यहाँ कुछ नहीं है, वहाँ कुछ नहीं है, जहाँ-जहाँ भी जाता हूँ, वहाँ कुछ नहीं है, सोचकर देखता हूँ जगत कुछ नहीं है—अपने आत्मा के ज्ञान से अधिक कुछ नहीं है।'

हमारे परमहितैषी पूर्वज महर्षियों ने जो कुछ आपको स्वाध्यायरूप में दिया, उस स्वाध्याय में आपका प्रेम हो, आपकी प्राप्ति हो। अपने आत्माराम में आपका सदा के लिए रमण हो। आपको आपका लक्ष्य प्राप्त हो। स्वाध्याय आपके लिये फलद्रूप हो। इति आशीर्वाद।

गणेशपुरी
१०-९-१९६८

आप लोगों के अपने
स्वामी मुक्तानन्द

॥ ॐ ॥

मुक्तानन्द महान,
जय सद्गुरु भगवान ।
जय मेरे गुरु महान,
जय सद्गुरु भगवान

ॐ नमः पार्वतीपतये हर हर हर महादेव ।
नमोऽस्त्वनन्ताय सहस्रमूर्तये सहस्रपादाऽक्षिशिरोरुबाहवे ।
सहस्रनाम्ने पुरुषाय शाश्वते सहस्रकोटीयुगधारिणे नमः ॥

ॐ नमः शिवाय गुरवे सच्चिदानन्दमूर्तये ।
निष्प्रपंचाय शान्ताय निरालम्बाय तेजसे ॥

मुक्तानन्दाय गुरवे शिष्यसंसारहारिणे ।
भक्तकार्यैकदेहाय नमस्ते चित्सदात्मने ॥

ॐ सह नाववतु । सह नौ भुनक्तु । सह वीर्यं करवावहै ।
तेजस्वि नावधीतमस्तु । मा विद्विषावहै ।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

श्रीगुरुपादुकापंचकम्

ॐ नमो गुरुभ्यो गुरुपादुकाभ्यो
नमः परेभ्यः परपादुकाभ्यः ।
आचार्यसिद्धेश्वरपादुकाभ्यो
नमो नमः श्रीगुरुपादुकाभ्यः ॥ १ ॥

ऐँकारह्रीँकाररहस्ययुक्त-
श्रीँकारगूढार्थमहाविभूत्या ।
ॐकारमर्मप्रतिपादिनीभ्यां
नमो नमः श्रीगुरुपादुकाभ्याम् ॥ २ ॥

होत्राग्निहौत्राग्निहविष्यहोतृ-
होमादिसर्वाकृतिभासमानम् ।
यद् ब्रह्म तद्बोधवितारिणीभ्यां
नमो नमः श्रीगुरुपादुकाभ्याम् ॥ ३ ॥

कामादिसर्पव्रजगारुडाभ्यां
विवेकवैराग्यनिधिप्रदाभ्यां ।
बोधप्रदाभ्यां द्रुतमोक्षदाभ्यां
नमो नमः श्रीगुरुपादुकाभ्याम् ॥ ४ ॥

अनंतसंसारसमुद्रतार-
नौकायिताभ्यां स्थिरभक्तिदाभ्यां ।
जाड्याब्धिसंशोषणवाडवाभ्यां
नमो नमः श्रीगुरुपादुकाभ्याम् ॥ ५ ॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

श्रीगुरुगीता

अथ श्रीगुरुगीता प्रारंभः ।

ॐ अस्य श्रीगुरुगीतास्तोत्रमंत्रस्य भगवान् सदाशिव ऋषिः । नाना-विधानि छंदांसि । श्रीगुरुपरमात्मा देवता । हं बीजं । सः शक्तिः । क्रों कीलकं । श्रीगुरुप्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ॥

॥ अथ ध्यानम् ॥

हंसाभ्यां परिवृत्तपत्रकमलैर्दिव्यैर्जगत्कारणै–र्विश्वोत्कीर्णमनेकदेहनिलयैः स्वच्छंदमात्मेच्छया । तद्द्योतं पदशांभवं तु चरणं दीपांकुरग्राहिणं प्रत्यक्षाक्षरविग्रहं गुरुपदं ध्यायेद्विभुं शाश्वतम् ॥ मम चतुर्विधपुरुषार्थसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

सूत उवाच

कैलासशिखरे रम्ये भक्तिसंधाननायकम् ।
प्रणम्य पार्वती भक्त्या शंकरं पर्यपृच्छत ॥ १ ॥

श्री देव्युवाच

ॐ नमो देवदेवेश परात्पर जगद्गुरो ।
सदाशिव महादेव गुरुदीक्षां प्रदेहि मे ॥ २ ॥
केन मार्गेण भो स्वामिन् देही ब्रह्ममयो भवेत् ।
त्वं कृपां कुरु मे स्वामिन् नमामि चरणौ तव ॥ ३ ॥

ईश्वर उवाच

मम रूपासि देवि त्वं त्वत्प्रीत्यर्थं वदाम्यहम्
लोकोपकारकः प्रश्नो न केनापि कृतः पुरा ॥ ४ ॥

दुर्लभं त्रिषु लोकेषु तच्छृणुष्व वदाम्यहम् ।
गुरुं विना ब्रह्म नान्यत् सत्यं सत्यं वरानने ॥ ५ ॥

वेदशास्त्रपुराणानि इतिहासादिकानि च ।
मंत्रयंत्रादिविद्याश्च स्मृतिरुच्चाटनादिकम् ॥ ६ ॥

शैवशाक्तागमादीनि अन्यानि विविधानि च ।
अपभ्रंशकराणीह जीवानां भ्रांतचेतसाम् ॥ ७ ॥

यज्ञो व्रतं तपो दानं जपस्तीर्थं तथैव च ।
गुरुतत्त्वमविज्ञाय मूढास्ते चरते जनाः ॥ ८ ॥

गुरुर्बुद्ध्यात्मनो नान्यत् सत्यं सत्यं न संशयः ।
तल्लाभार्थं प्रयत्नस्तु कर्तव्यो हि मनीषिभिः ॥ ९ ॥

गूढविद्या जगन्माया देहे चाज्ञानसंभवा ।
उदयः यत्प्रकाशेन गुरुशब्देन कथ्यते ॥ १० ॥

सर्वपापविशुद्धात्मा श्रीगुरोः पादसेवनात् ।
देही ब्रह्म भवेद्यस्मात् त्वत्कृपार्थं वदामि ते ॥ ११ ॥

गुरुपादांबुजं स्मृत्वा जलं शिरसि धारयेत् ।
सर्वतीर्थावगाहस्य संप्राप्नोति फलं नरः ॥ १२ ॥

शोषणं पापपङ्कस्य दीपनं ज्ञानतेजसाम् ।
गुरुपादोदकं सम्यक् संसारार्णवतारकम् ॥ १३ ॥

अज्ञानमूलहरणं जन्मकर्मनिवारणम् ।
ज्ञानवैराग्यसिद्ध्यर्थं गुरुपादोदकं पिबेत् ॥ १४ ॥

गुरोः पादोदकं पीत्वा गुरोरुच्छिष्टभोजनम् ।
गुरुमूर्तेः सदा ध्यानं गुरुमंत्रं सदा जपेत् ॥ १५ ॥

काशीक्षेत्रं तन्निवासो जाह्नवी चरणोदकम् ।
गुरुर्विश्वेश्वरः साक्षात् तारकं ब्रह्म निश्चितम् ॥ १६ ॥

गुरोः पादोदकं यत्तु गयाऽसौ सोऽक्षयो वटः ।
तीर्थराजः प्रयागश्च गुरुमूर्त्यै नमो नमः ॥ १७ ॥

गुरुमूर्तिं स्मरेन्नित्यं गुरुनाम सदा जपेत् ।
गुरोराज्ञां प्रकुर्वीत गुरोरन्यन्न भावयेत् ॥ १८ ॥

गुरुवक्त्रस्थितं ब्रह्म प्राप्यते तत्प्रसादतः ।
गुरोर्ध्यानं सदा कुर्यात् कुलस्त्री स्वपतेर्यथा ॥ १९ ॥

स्वाश्रमं च स्वजातिं च स्वकीर्तिपुष्टिवर्धनम् ।
एतत्सर्वं परित्यज्य गुरोरन्यन्न भावयेत् ॥ २० ॥

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां सुलभं परमं पदम् ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन गुरोराराधनं कुरु ॥ २१ ॥

त्रैलोक्ये स्फुटवक्तारो देवाद्यसुरपन्नगाः ।
गुरुवक्त्रस्थिता विद्या गुरुभक्त्या तु लभ्यते ॥ २२ ॥

गुकारस्त्वन्धकारश्च रुकारस्तेज उच्यते ।
अज्ञानग्रासकं ब्रह्म गुरुरेव न संशयः ॥ २३ ॥

गुकारः प्रथमो वर्णो मायादिगुणभासकः ।
रुकारो द्वितीयो ब्रह्म मायाभ्रान्तिविनाशनम् ॥ २४ ॥

एवं गुरुपदं श्रेष्ठं देवानामपि दुर्लभम् ।
हाहाहूहूगणैश्चैव गन्धर्वैश्च प्रपूज्यते ॥ २५ ॥

ध्रुवं तेषां च सर्वेषां नास्ति तत्त्वं गुरोः परम् ।
आसनं शयनं वस्त्रं भूषणं वाहनादिकम् ॥ २६ ॥

साधकेन प्रदातव्यं गुरुसंतोषकारकम् ।
गुरोराराधनं कार्यं स्वजीवित्वं निवेदयेत् ॥ २७ ॥

कर्मणा मनसा वाचा नित्यमाराधयेद् गुरुम् ।
दीर्घदण्डं नमस्कृत्य निर्लज्जो गुरुसन्निधौ ॥ २८ ॥

शरीरमिद्रन्यिं प्राणान् सद्गुरुभ्यो निवेदयेत् ।
आत्मदारादिकं सर्वं सद्गुरुभ्यो निवेदयेत् ॥ २९ ॥

कृमिकीटभस्मविष्ठा–दुर्गन्धिमलमूत्रकम् ।
श्लेष्मरक्तं त्वचा मांसं वंचयेन्न वरानने ॥ ३० ॥

संसारवृक्षमारूढाः पतन्तो नरकार्णवे ।
येन चैवोद्धृताः सर्वे तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ ३१ ॥

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु–र्गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुरेव परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ ३२ ॥

हेतवे जगतामेव संसारार्णवसेतवे ।
प्रभवे सर्वविद्यानां शंभवे गुरवे नमः ॥ ३३ ॥

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ ३४ ॥

त्वं पिता त्वं च मे माता त्वं बंधुस्त्वं च देवता ।
संसारप्रतिबोधार्थं तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ ३५ ॥

यत्सत्येन जगत्सत्यं यत्प्रकाशेन भाति तत् ।
यदानन्देन नन्दन्ति तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ ३६ ॥

यस्य स्थित्या सत्यमिदं यद्भाति भानुरूपतः
प्रियं पुत्रादि यत्प्रीत्या तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ ३७ ॥

येन चेतयते हीदं चित्तं चेतयते न यम् ।
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यादि तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ ३८ ॥

यस्य ज्ञानादिदं विश्वं न दृश्यं भिन्नभेदतः ।
सदेकरूपरूपाय तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ ३९ ॥

यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः ।
अनन्यभावभावाय तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ ४० ॥

यस्य कारणरूपस्य कार्यरूपेण भाति यत् ।
कार्यकारणरूपाय तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ ४१ ॥

नानारूपमिदं सर्वं न केनाप्यस्ति भिन्नता ।
कार्यकारणता चैव तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ ४२ ॥

यदङ्घ्रिकमलद्वंद्वं द्वंद्वतापनिवारकम् ।
तारकं सर्वदाऽऽपद्भ्यः श्रीगुरुं प्रणमाम्यहम् ॥ ४३ ॥

शिवे क्रुद्धे गुरुस्त्राता गुरौ क्रुद्धे शिवो न हि ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन श्रीगुरुं शरणं व्रजेत् ॥ ४४ ॥

वन्दे गुरुपदद्वंद्वं वाङ्मनश्चित्तगोचरम् ।
श्वेतरक्तप्रभाभिन्नं शिवशक्त्यात्मकं परम् ॥ ४५ ॥

गुकारं च गुणातीतं रुकारं रूपवर्जितम् ।
गुणातीतस्वरूपं च यो दद्यात्स गुरुः स्मृतः ॥ ४६ ॥

अ-त्रिनेत्रः सर्वसाक्षी अ-चतुर्बाहुरच्युतः ।
अ-चतुर्वदनो ब्रह्मा श्रीगुरुः कथितः प्रिये ॥ ४७ ॥

अयं मयाञ्जलिर्बद्धो दयासागरवृद्धये ।
यदनुग्रहतो जन्तु–श्चित्रसंसारमुक्तिभाक् ॥ ४८ ॥

श्रीगुरोः परमं रूपं विवेकचक्षुषोऽमृतम् ।
मन्दभाग्या न पश्यन्ति अन्धाः सूर्योदयं यथा ॥ ४९ ॥

श्रीनाथचरणद्वंद्वं यस्यां दिशि विराजते ।
तस्यै दिशे नमस्कुर्याद् भक्त्या प्रतिदिनं प्रिये ॥ ५० ॥

तस्यै दिशे सततमञ्जलिरेष आर्ये
प्रक्षिप्यते मुखरितो मधुपैर्बुधैश्च ।
जागर्ति यत्र भगवान् गुरुचक्रवर्ती
विश्वोदयप्रलयनाटकनित्यसाक्षी ॥ ५१ ॥

श्रीनाथादिगुरुत्रयं गणपतिं पीठत्रयं भैरवं
सिद्धौघं बटुकत्रयं पदयुगं दूतीक्रमं मण्डलम् ।
वीरान् द्व्यष्टचतुष्कषष्टिनवकं वीरावलीपञ्चकं
श्रीमन्मालिनिमंत्रराजसहितं वन्दे गुरोर्मण्डलम् ॥ ५२ ॥

अभ्यस्तैः सकलैः सुदीर्घमनिलै–र्व्याधिप्रदैर्दुष्करैः
प्राणायामशतैरनेककरणै–र्दुःखात्मकैर्दुर्जयैः ।
यस्मिन्नभ्युदिते विनश्यति बली वायुः स्वयं तत्क्षणात्
प्राप्तुं तत्सहजं स्वभावमनिशं सेवध्वमेकं गुरुम् ॥ ५३ ॥

स्वदेशिकस्यैव शरीरचिन्तनं भवेदनन्तस्य शिवस्य चिन्तनम् ।
स्वदेशिकस्यैव च नामकीर्तनं भवेदनन्तस्य शिवस्य कीर्तनम् ॥ ५४ ॥

यत्पादरेणुकणिका कापि संसारवारिधेः ।
सेतुबंधायते नाथं देशिकं तमुपास्महे ॥ ५५ ॥

यस्मादनुग्रहं लब्ध्वा महदज्ञानमुत्सृजेत् ।
तस्मै श्रीदेशिकेंद्राय नमश्चाभीष्टसिद्धये ॥ ५६ ॥

पादाब्जं सर्वसंसार–दावानलविनाशकम् ।
ब्रह्मरंध्रे सिताम्भोज–मध्यस्थं चन्द्रमण्डले ॥ ५७ ॥

अकथादि त्रिरेखाब्जे सहस्रदलमण्डले ।
हंसपार्श्वत्रिकोणे च स्मरेत्तन्मध्यगं गुरुम् ॥ ५८ ॥

सकलभुवनसृष्टिः कल्पिताशेषपुष्टि-
र्निखिलनिगमदृष्टिः संपदां व्यर्थदृष्टिः ।
अवगुणपरिमार्ष्टिस्तत्पदार्थैकदृष्टि-
र्भवगुणपरमेष्ठिर्मोक्षमार्गैकदृष्टिः ॥ ५९ ॥

सकलभुवनरंगस्थापनास्तंभयष्टिः
सकरुणरसवृष्टिस्तत्त्वमालासमष्टिः ।
सकलसमयवृष्टिः सच्चिदानंददृष्टि-
र्निवसतु मयि नित्यं श्रीगुरोर्दिव्यदृष्टिः ॥ ६० ॥

अग्निशुद्धसमं तात ज्वालापरिचकाधिया ।
मंत्रराजमिमं मन्येऽहर्निशं पातु मृत्युतः ॥ ६१ ॥

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तत्समीपके ।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्य बाह्यतः ॥ ६२ ॥

अजोऽहमजरोऽहं च अनादिनिधनः स्वयम् ।
अविकारश्चिदानन्द अणीयान्महतो महान् ॥ ६३ ॥

अपूर्वाणां परं नित्यं स्वयंज्योतिर्निरामयम् ।
विरजं परमाकाशं ध्रुवमानन्दमव्ययम् ॥ ६४ ॥

श्रुतिः प्रत्यक्षमैतिह्यमनुमानश्चतुष्टयम् ।
यस्य चात्मतपो वेद देशिकं च सदा स्मरेत् ॥ ६५ ॥

मननं यद्भवं कार्यं तद्वदामि महामते ।
साधुत्वं च मया दृष्ट्वा त्वयि तिष्ठति सांप्रतम् ॥ ६६ ॥

अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् ।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ ६७ ॥

सर्वश्रुतिशिरोरत्न–विराजितपदांबुजः ।
वेदान्ताम्बुजसूर्यो यस्तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ ६८ ॥

यस्य स्मरणमात्रेण ज्ञानमुत्पद्यते स्वयम् ।
य एव सर्वसंप्राप्तिस्तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ ६९ ॥

चैतन्यं शाश्वतं शान्तं व्योमातीतं निरंजनम् ।
नादबिंदुकलातीतं तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ ७० ॥

स्थावरं जंगमं चैव तथा चैव चराचरम् ।
व्याप्तं येन जगत्सर्वं तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ ७१ ॥

ज्ञानशक्तिसमारूढस्तत्त्वमालाविभूषितः ।
भुक्तिमुक्तिप्रदाता यस्तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ ७२ ॥

अनेकजन्मसंप्राप्त–सर्वकर्मविदाहिने ।
स्वात्मज्ञानप्रभावेण तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ ७३ ॥

न गुरोरधिकं तत्त्वं न गुरोरधिकं तपः ।
तत्त्वं ज्ञानात्परं नास्ति तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ ७४ ॥

मन्नाथः श्रीजगन्नाथो मद्गुरुस्त्रिजगद्गुरुः ।
ममात्मा सर्वभूतात्मा तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ ७५ ॥

ध्यानमूलं गुरोर्मूर्तिः पूजामूलं गुरोः पदम् ।
मंत्रमूलं गुरोर्वाक्यं मोक्षमूलं गुरोः कृपा ॥ ७६ ॥

गुरुरादिरनादिश्च गुरुः परमदैवतम् ।
गुरोः परतरं नास्ति तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ ७७ ॥

सप्तसागरपर्यन्त–तीर्थस्नानादिकं फलम् ।
गुरोरङ्घ्रिपयोबिंदु–सहस्रांशेन दुर्लभम् ॥ ७८ ॥

हरौ रुष्टे गुरुस्त्राता गुरौ रुष्टे न कश्चन ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन श्रीगुरुं शरणं व्रजेत् ॥ ७९ ॥

गुरुरेव जगत्सर्वं ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम् ।
गुरोः परतरं नास्ति तस्मात्संपूजयेद् गुरुम् ॥ ८० ॥

ज्ञानं विज्ञानसहितं लभ्यते गुरुभक्तितः ।
गुरोः परतरं नास्ति ध्येयोऽसौ गुरुमार्गिभिः ॥ ८१ ॥

यस्मात्परतरं नास्ति नेति नेतीति वै श्रुतिः ।
मनसा वचसा चैव नित्यमाराधयेद् गुरुम् ॥ ८२ ॥

गुरोः कृपाप्रसादेन ब्रह्मविष्णुसदाशिवाः ।
समर्थाः प्रभवादौ च केवलं गुरुसेवया ॥ ८३ ॥

देवकिन्नरगंधर्वाः पितरो यक्षचारणाः ।
मुनयोऽपि न जानन्ति गुरुशुश्रूषणे विधिम् ॥ ८४ ॥

महाहंकारगर्वेण तपोविद्याबलान्विताः ।
संसारकुहरावर्ते घटयंत्रे यथा घटाः ॥ ८५ ॥

न मुक्ता देवगंधर्वाः पितरो यक्षकिन्नराः ।
ऋषयः सर्वसिद्धाश्च गुरुसेवापराङ्मुखाः ॥ ८६ ॥

ध्यानं शृणु महादेवि सर्वानन्दप्रदायकम् ।
सर्वसौख्यकरं नित्यं भुक्तिमुक्तिविधायकम् ॥ ८७ ॥

श्रीमत्परब्रह्म गुरुं स्मरामि श्रीमत्परब्रह्म गुरुं वदामि ।
श्रीमत्परब्रह्म गुरुं नमामि श्रीमत्परब्रह्म गुरुं भजामि ॥ ८८ ॥

ब्रह्मानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्ति
द्वंद्वातीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादिलक्ष्यम्।
एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधीसाक्षिभूतं
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्‌गुरुं तं नमामि ॥ ८९ ॥

नित्यं शुद्धं निराभासं निराकारं निरंजनम् ।
नित्यबोधं चिदानन्दं गुरुं ब्रह्म नमाम्यहम् ॥ ९० ॥

हृदंबुजे कर्णिकमध्यसंस्थे सिंहासने संस्थितदिव्यमूर्तिम् ।
ध्यायेद्गुरुं चंद्रकलाप्रकाशं चित्पुस्तकाभीष्टवरं दधानम् ॥ ९१ ॥

श्वेताम्बरं श्वेतविलेपपुष्पं मुक्ताविभूषं मुदितं द्विनेत्रम् ।
वामांकपीठस्थितदिव्यशक्तिं मन्दस्मितं सांद्रकृपानिधानम् ॥ ९२ ॥

आनन्दमानन्दकरं प्रसन्नं ज्ञानस्वरूपं निजबोधयुक्तम् ।
योगीन्द्रमीड्यं भवरोगवैद्यं श्रीमद्‌गुरुं नित्यमहं नमामि ॥ ९३ ॥

यस्मिन्सृष्टिस्थितिध्वंस–निग्रहानुग्रहात्मकम् ।
कृत्यं पंचविधं शश्व–द्भासते तं नमाम्यहम् ॥ ९४ ॥

प्रातः शिरसि शुक्लाब्जे द्विनेत्रं द्विभुजं गुरुम् ।
वराभययुतं शान्तं स्मरेत्तं नामपूर्वकम् ॥ ९५ ॥

न गुरोरधिकं न गुरोरधिकं न गुरोरधिकं न गुरोरधिकम् ।
शिवशासनतः शिवशासनतः शिवशासनतः शिवशासनतः ॥९६॥

इदमेव शिवं त्विदमेव शिवं त्विदमेव शिवं त्विदमेव शिवम् ।
मम शासनतो मम शासनतो मम शासनतो मम शासनतः ॥ ९७ ॥

एवंविधं गुरुं ध्यात्वा ज्ञानमुत्पद्यते स्वयम् ।
तत्सद्गुरुप्रसादेन मुक्तोऽहमिति भावयेत् ॥ ९८ ॥

गुरुदर्शितमार्गेण मनःशुद्धिं तु कारयेत् ।
अनित्यं खण्डयेत्सर्वं यत्किञ्चिदात्मगोचरम् ॥ ९९ ॥

ज्ञेयं सर्वस्वरूपं च ज्ञानं च मन उच्यते ।
ज्ञानं ज्ञेयसमं कुर्यान् नान्यः पन्था द्वितीयकः ॥ १०० ॥

एवं श्रुत्वा महादेवि गुरुनिन्दां करोति यः ।
स याति नरकं घोरं यावच्चंद्रदिवाकरौ ॥ १०१ ॥

यावत्कल्पांतको देह–स्तावदेव गुरुं स्मरेत् ।
गुरुलोपो न कर्तव्यः स्वच्छंदो यदि वा भवेत् ॥ १०२ ॥

हुंकारेण न वक्तव्यं प्राज्ञैः शिष्यैः कथंचन ।
गुरोरग्रे न वक्तव्यमसत्यं च कदाचन ॥ १०३ ॥

गुरुं त्वंकृत्य हुंकृत्य गुरुं निर्जित्य वादतः ।
अरण्ये निर्जले देशे स भवेद् ब्रह्मराक्षसः ॥ १०४ ॥

मुनिभिः पन्नगैर्वाऽपि सुरैर्वा शापितो यदि ।
कालमृत्युभयाद्वापि गुरू रक्षति पार्वति ॥ १०५ ॥

अशक्ता हि सुराद्याश्च अशक्ता मुनयस्तथा ।
गुरुशापेन ते शीघ्रं क्षयं यान्ति न संशयः ॥ १०६ ॥

मंत्रराजमिदं देवि गुरुरित्यक्षरद्वयम् ।
स्मृतिवेदार्थवाक्येन गुरुः साक्षात्परं पदम् ॥ १०७ ॥

श्रुतिस्मृती अविज्ञाय केवलं गुरुसेवकाः ।
ते वै संन्यासिनः प्रोक्ता इतरे वेषधारिणः ॥ १०८ ॥

नित्यं ब्रह्म निराकारं निर्गुणं बोधयेत् परम् ।
सर्वं ब्रह्म निराभासं दीपो दीपान्तरं यथा ॥ १०९ ॥

गुरोः कृपाप्रसादेन आत्मारामं निरीक्षयेत् ।
अनेन गुरुमार्गेण स्वात्मज्ञानं प्रवर्तते ॥ ११० ॥

आब्रह्मस्तंबपर्यन्तं परमात्मस्वरूपकम् ।
स्थावरं जंगमं चैव प्रणमामि जगन्मयम् ॥ १११ ॥

वन्देऽहं सच्चिदानन्दं भेदातीतं सदा गुरुम् ।
नित्यं पूर्णं निराकारं निर्गुणं स्वात्मसंस्थितम् ॥ ११२ ॥

परात्परतरं ध्येयं नित्यमानन्दकारकम् ।
हृदयाकाशमध्यस्थं शुद्धस्फटिकसन्निभम् ॥ ११३ ॥

स्फटिकप्रतिमारूपं दृश्यते दर्पणे यथा ।
तथात्मनि चिदाकारं आनन्दं सोऽहमित्युत ॥ ११४ ॥

अंगुष्ठमात्रपुरुषं ध्यायतश्चिन्मयं हृदि ।
तत्र स्फुरति भावो यः श्रृणु तं कथयाम्यहम् ॥ ११५ ॥

अगोचरं तथाऽगम्यं नामरूपविवर्जितम् ।
निःशब्दं तद्विजानीयात् स्वभावं ब्रह्म पार्वति ॥ ११६ ॥

यथा गन्धः स्वभावेन कर्पूरकुसुमादिषु ।
शीतोष्णादिस्वभावेन तथा ब्रह्म च शाश्वतम् ॥ ११७ ॥

स्वयं तथाविधो भूत्वा स्थातव्यं यत्रकुत्रचित् ।
कीटभ्रमरवत्तत्र ध्यानं भवति तादृशम् ॥ ११८ ॥

गुरुध्यानं तथा कृत्वा स्वयं ब्रह्ममयो भवेत् ।
पिण्डे पदे तथा रूपे मुक्तोऽसौ नात्र संशयः ॥ ११९ ॥

श्री पार्वत्युवाच

पिण्डं किं तु महादेव पदं किं समुदाहृतम् ।
रूपातीतं च रूपं किं एतदाख्याहि शंकर ॥ १२० ॥

श्री महादेव उवाच

पिण्डं कुण्डलिनीशक्तिः पदं हंसमुदाहृतम् ।
रूपं बिन्दुरिति ज्ञेयं रूपातीतं निरंजनम् ॥ १२१ ॥

पिण्डे मुक्ता पदे मुक्ता रूपे मुक्ता वरानने ।
रूपातीते तु ये मुक्ता–स्ते मुक्ता नात्र संशयः ॥ १२२ ॥

स्वयं सर्वमयो भूत्वा परं तत्त्वं विलोकयेत् ।
परात्परतरं नान्यत् सर्वमेतन्निरालयम् ॥ १२३ ॥

तस्यावलोकनं प्राप्य सर्वसंगविवर्जितः ।
एकाकी निःस्पृहः शान्त–स्तिष्ठासेत् तत्प्रसादतः ॥ १२४ ॥

लब्धं वाऽथ न लब्धं वा स्वल्पं वा बहुलं तथा ।
निष्कामेनैव भोक्तव्यं सदा संतुष्टचेतसा ॥ १२५ ॥

सर्वज्ञपदमित्याहु–र्देही सर्वमयो बुधाः ।
सदानन्दः सदा शान्तो रमते यत्रकुत्रचित् ॥ १२६ ॥

यत्रैव तिष्ठते सोऽपि स देशः पुण्यभाजनम् ।
मुक्तस्य लक्षणं देवि तवाग्रे कथितं मया ॥ १२७ ॥

उपदेशस्तथा देवि गुरुमार्गेण मुक्तिदः ।
गुरुभक्तिस्तथा ध्यानं सकलं तव कीर्तितम् ॥ १२८ ॥

अनेन यद्भवेत्कार्यं तद्वदामि महामते ।
लोकोपकारकं देवि लौकिकं तु न भावयेत् ॥ १२९ ॥

लौकिकात्कर्मणो यान्ति ज्ञानहीना भवार्णवम् ।
ज्ञानी तु भावयेत्सर्वं कर्म निष्कर्म यत्कृतम् ॥ १३० ॥

इदं तु भक्तिभावेन पठते शृणुते यदि ।
लिखित्वा तत्प्रदातव्यं तत्सर्वं सफलं भवेत् ॥ १३१ ॥

गुरुगीतात्मकं देवि शुद्धतत्त्वं मयोदितम् ।
भवव्याधिविनाशार्थं स्वयमेव जपेत्सदा ॥ १३२ ॥

गुरुगीताक्षरैकं तु मंत्रराजमिमं जपेत् ।
अन्ये च विविधा मंत्राः कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ १३३ ॥

अनंतफलमाप्नोति गुरुगीताजपेन तु ।
सर्वपापप्रशमनं सर्वदारिद्र्यनाशनम् ॥ १३४ ॥

कालमृत्युभयहरं सर्वसंकटनाशनम् ।
यक्षराक्षसभूतानां चोरव्याघ्रभयापहम् ॥ १३५ ॥

महाव्याधिहरं सर्वं विभूतिसिद्धिदं भवेत् ।
अथवा मोहनं वश्यं स्वयमेव जपेत्सदा ॥ १३६ ॥

वस्त्रासने च दारिद्र्यं पाषाणे रोगसंभवः ।
मेदिन्यां दुःखमाप्नोति काष्ठे भवति निष्फलम् ॥ १३७ ॥

कृष्णाजिने ज्ञानसिद्धि–र्मोक्षश्रीर्व्याघ्रचर्मणि ।
कुशासने ज्ञानसिद्धिः सर्वसिद्धिस्तु कम्बले ॥ १३८ ॥

कुशैर्वा दूर्वया देवि आसने शुभ्रकम्बले ।
उपविश्य ततो देवि जपेदेकाग्रमानसः ॥ १३९ ॥

ध्येयं शुक्लं च शांत्यर्थं वश्ये रक्तासनं प्रिये ।
अभिचारे कृष्णवर्णं पीतवर्णं धनागमे ॥ १४० ॥

उत्तरे शांतिकामस्तु वश्ये पूर्वमुखो जपेत् ।
दक्षिणे मारणं प्रोक्तं पश्चिमे च धनागमः ॥ १४१ ॥

मोहनं सर्वभूतानां बंधमोक्षकरं भवेत् ।
देवराजप्रियकरं सर्वलोकवशं भवेत् ॥ १४२ ॥

सर्वेषां स्तम्भनकरं गुणानां च विवर्धनम् ।
दुष्कर्मनाशनं चैव सुकर्मसिद्धिदं भवेत् ॥ १४३ ॥

असिद्धं साधयेत्कार्यं नवग्रहभयापहम् ।
दुःस्वप्ननाशनं चैव सुस्वप्नफलदायकम् ॥ १४४ ॥

सर्वशान्तिकरं नित्यं तथा वंध्यासुपुत्रदम् ।
अवैधव्यकरं स्त्रीणां सौभाग्यदायकं सदा ॥ १४५ ॥

आयुरारोग्यऐश्वर्य–पुत्रपौत्रप्रवर्धनम् ।
अकामतः स्त्री विधवा जपान्मोक्षमवाप्नुयात् ॥ १४६ ॥

अवैधव्यं सकामा तु लभते चान्यजन्मनि ।
सर्वदुःखभयं विघ्नं नाशयेच्छापहारकम् ॥ १४७ ॥

सर्वबाधाप्रशमनं धर्मार्थकाममोक्षदम् ।
यं यं चिन्तयते कामं तं तं प्राप्नोति निश्चितम् ॥ १४८ ॥

कामितस्य कामधेनुः कल्पनाकल्पपादपः ।
चिन्तामणिश्चिंतितस्य सर्वमंगलकारकम् ॥ १४९ ॥

मोक्षहेतुर्जपेन्नित्यं मोक्षश्रियमवाप्नुयात् ।
भोगकामो जपेद्यो वै तस्य कामफलप्रदम् ॥ १५० ॥

जपेच्छाक्तश्च सौरश्च गाणपत्यश्च वैष्णवः ।
शैवश्च सिद्धिदं देवि सत्यं सत्यं न संशयः ॥ १५१ ॥

अथ काम्यजपे स्थानं कथयामि वरानने ।
सागरे वा सरित्तीरेऽथवा हरिहरालये ॥ १५२ ॥

शक्तिदेवालये गोष्ठे सर्वदेवालये शुभे ।
वटे च धात्रीमूले वा मठे वृंदावने तथा ॥ १५३ ॥

पवित्रे निर्मले स्थाने नित्यानुष्ठानतोऽपि वा ।
निर्वेदनेन मौनेन जपमेतं समाचरेत् ॥ १५४ ॥

श्मशाने भयभूमौ तु वटमूलान्तिके तथा ।
सिध्यन्ति धौत्तरे मूले चूतवृक्षस्य सन्निधौ ॥ १५५ ॥

गुरुपुत्रो वरं मूर्खस्तस्य सिध्यन्ति नान्यथा ।
शुभकर्माणि सर्वाणि दीक्षाव्रततपांसि च ॥ १५६ ॥

संसारमलनाशार्थं भवपाशनिवृत्तये ।
गुरुगीताम्भसि स्नानं तत्त्वज्ञः कुरुते सदा ॥ १५७ ॥

स एव च गुरुः साक्षात् सदा सद्ब्रह्मवित्तमः ।
तस्य स्थानानि सर्वाणि पवित्राणि न संशयः ॥ १५८ ॥

सर्वशुद्धः पवित्रोऽसौ स्वभावाद्यत्र तिष्ठति ।
तत्र देवगणाः सर्वे क्षेत्रे पीठे वसन्ति हि ॥ १५९ ॥

आसनस्थः शयानो वा गच्छंस्तिष्ठन् वदन्नपि ।
अश्वारूढो गजारूढः सुप्तो वा जागृतोऽपि वा ॥ १६० ॥

शुचिष्मांश्च सदा ज्ञानी गुरुगीताजपेन तु ।
तस्य दर्शनमात्रेण पुनर्जन्म न विद्यते ॥ १६१ ॥

समुद्रे च यथा तोयं क्षीरे क्षीरं घृते घृतम् ।
भिन्ने कुम्भे यथाकाश–स्तथात्मा परमात्मनि ॥ १६२ ॥ ✓

तथैव ज्ञानी जीवात्मा परमात्मनि लीयते ।
ऐक्येन रमते ज्ञानी यत्र तत्र दिवानिशम् ॥ १६३ ॥

एवंविधो महामुक्तः सर्वदा वर्तते बुधः ।
तस्य सर्वप्रयत्नेन भावभक्तिं करोति यः ॥ १६४ ॥

सर्वसंदेहरहि भवति पार्वति ।तो मुक्तो
भुक्तिमुक्तिद्वयं तस्य जिह्वाग्रे च सरस्वती ॥ १६५ ॥

अनेन प्राणिनः सर्वे गुरुगीताजपेन तु ।
सर्वसिद्धिं प्राप्नुवन्ति भुक्तिं मुक्तिं न संशयः ॥ १६६ ॥

सत्यं सत्यं पुनः सत्यं धर्म्यं सांख्यं मयोदितम् ।
गुरुगीतासमं नास्ति सत्यं सत्यं वरानने ॥ १६७ ॥

एको देव एकधर्म एकनिष्ठा परं तपः ।
गुरोः परतरं नान्यन्नास्ति तत्त्वं गुरोः परम् ॥ १६८ ॥

माता धन्या पिता धन्यो धन्यो वंशः कुलं तथा ।
धन्या च वसुधा देवि गुरुभक्तिः सुदुर्लभा ॥ १६९ ॥

शरीरमिन्द्रियं प्राणाश्चार्थः स्वजनबांधवाः ।
माता पिता कुलं देवि गुरुरेव न संशयः॥ १७० ॥

आकल्पजन्मना कोट्या जपव्रततपःक्रियाः ।
तत्सर्वं सफलं देवि गुरुसंतोषमात्रतः ॥ १७१ ॥

विद्यातपोबलेनैव मंदभाग्याश्च ये नराः ।
गुरुसेवां न कुर्वन्ति सत्यं सत्यं वरानने ॥ १७२ ॥

ब्रह्मविष्णुमहेशाश्च देवर्षिपितृकिन्नराः ।
सिद्धचारणयक्षाश्च अन्येऽपि मुनयो जनाः । १७३ ॥

गुरुभावः परं तीर्थमन्यतीर्थं निरर्थकम् ।
सर्वतीर्थाश्रयं देवि पादाङ्गुष्ठं च वर्तते ॥ १७४ ॥

जपेन जयमाप्नोति चानंतफलमाप्नुयात् ।
हीनकर्म त्यजन्सर्वं स्थानानि चाधमानि च ॥ १७५ ॥

जपं हीनासनं कुर्वन् हीनकर्मफलप्रदम् ।
गुरुगीतां प्रयाणे वा संग्रामे रिपुसंकटे ॥ १७६ ॥

जपञ्जयमवाप्नोति मरणे मुक्तिदायकम् ।
सर्वकर्म च सर्वत्र गुरुपुत्रस्य सिध्यति ॥ १७७ ॥

इदं रहस्यं नो वाच्यं तवाग्रे कथितं मया ।
सुगोप्यं च प्रयत्नेन मम त्वं च प्रिया त्विति ॥ १७८ ॥

स्वामिमुख्यगणेशादि–विष्ण्वादीनां च पार्वति ।
मनसापि न वक्तव्यं सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥ १७९ ॥

अतीवपक्वचित्ताय श्रद्धाभक्तियुताय च ।
प्रवक्तव्यमिदं देवि ममात्माऽसि सदा प्रिये ॥ १८० ॥

अभक्ते वंचके धूर्ते पाखंडे नास्तिके नरे ।
मनसापि न वक्तव्या गुरुगीता कदाचन ॥ १८१ ॥

संसार–सागर–समुद्धरणैक–मन्त्रं
ब्रह्मादि–देव–मुनि–पूजित–सिद्ध–मन्त्रम् ॥
दारिद्र्य–दुःख–भवरोग–विनाश–मन्त्रं
वन्दे महाभय–हरं गुरुराज–मन्त्रम् ॥ १८२ ॥

इति श्रीस्कंदपुराणे उत्तरखण्डे ईश्वरपार्वतीसंवादे गुरुगीता समाप्ता ।

॥ श्री गुरुदेवचरणार्पणमस्तु ॥
॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

श्रीअवधूतस्तोत्रम्

मुक्तानन्दाय गुरवे शिष्यसंसारहारिणे ।
भक्तकार्यैकदेहाय नमस्ते चित्सदात्मने ॥ १ ॥

निर्वासनं निराकाङ्क्षं सर्वदोषविवर्जितम् ।
निरालम्बं निरातंकं नित्यानन्दं नमाम्यहम् ॥ २ ॥

निर्ममं निरहंकारं समलोष्ठाश्मकाञ्चनम् ।
समदुःखसुखं धीरं ह्यवधूतं नमाम्यहम् ॥ ३ ॥

अविनाशिनमात्मानं ह्येकं विज्ञाय तत्त्वतः ।
वीतरागभयक्रोधं नित्यानन्दं नमाम्यहम् ॥ ४ ॥

नाहं देहो न मे देहो जीवो नाहमहं हि चित् ।
एवं विज्ञाय सन्तुष्टं ह्यवधूतं नमाम्यहम् ॥ ५ ॥
समस्तं कल्पनामात्रं ह्यात्मा मुक्तः सनातनः ।
इति विज्ञाय संतृप्तं नित्यानन्दं नमाम्यहम् ॥ ६ ॥

ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं कामसंकल्पवर्जितम् ।
हेयोपादेयहीनं तं ह्यवधूतं नमाम्यहम् ॥ ७ ॥

स्वभावेनैव यो योगी सुखं भोगं न वाञ्छति ।
यदृच्छालाभसन्तुष्टं नित्यानन्दं नमाम्यहम् ॥ ८ ॥

नैव निन्दाप्रशंसाभ्यां यस्य विक्रियते मनः ।
आत्मक्रीडं महात्मानं ह्यवधूतं नमाम्यहम् ॥ ९ ॥

नित्यं जाग्रदवस्थायां स्वप्नवद्योऽवतिष्ठते ।
निश्चिन्तं चिन्मयात्मानं नित्यानन्दं नमाम्यहम् ॥ १० ॥

द्वेष्यं नास्ति प्रियं नास्ति नास्ति यस्य शुभाशुभम् ।
भेदज्ञानविहीनं तं ह्यवधूतं नमाम्यहम् ॥ ११ ॥

जडं पश्यति नो यस्तु जगत्पश्यति चिन्मयम् ।
नित्ययुक्तं गुणातीतं नित्यानन्दं नमाम्यहम् ॥ १२ ॥

यो हि दर्शनमात्रेण पवते भुवनत्रयम् ।
पावनं जंगमं तीर्थं ह्यवधूतं नमाम्यहम् ॥ १३ ॥

सर्वपूज्यं सदा पूर्णं ह्यखण्डानन्दविग्रहम् ।
स्वप्रकाशं चिदानन्दं नित्यानन्दं नमाम्यहम् ॥ १४ ॥

निष्कलं निष्क्रियं शान्तं निर्मलं परमामृतम् ।
गणेशपुरीवासिनं ह्यवधूतं नमाम्यहम् ॥ १५ ॥

योगपूर्णं तपोमूर्तिं प्रेमपूर्णं सुदर्शनम् ।
ज्ञानपूर्णं कृपामूर्तिं नित्यानन्दं नमाम्यहम् ॥ १६ ॥

प्रार्थना

दुर्जनः सज्जनो भूयात् सज्जनः शान्तिमाप्नुयात् ।
शान्तो मुच्येत बन्धेभ्यो मुक्तश्चान्यान् विमोचयेत् ॥

स्वस्ति प्रजाभ्यः परिपालयन्तां
न्याय्येन मार्गेण महीं महीशाः ।
गोब्राह्मणेभ्यः शुभमस्तु नित्यं
लोकाः समस्ताः सुखिनो भवन्तु ॥

काले वर्षतु पर्जन्यः पृथिवी शस्यशालिनी ।
देशोऽयं क्षोभरहितो ब्राह्मणाः सन्तु निर्भयाः ॥

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखभाग्भवेत् ॥

सर्वस्तरतु दुर्गाणि सर्वो भद्राणि पश्यतु ।
सर्वः कामानवाप्नोतु सर्वः सर्वत्र नन्दतु ॥

स्वस्ति मात्र उत पित्रे नो अस्तु
स्वस्ति गोभ्यो जगते पूरुषेभ्यः ।
विश्वं सुभूतं सुविदत्रं नो अस्तु
ज्योगेव दृशेम सूर्यम् ॥

॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

सद्‌गुरु की आरती

आरती करूँ सद्‌गुरु की करूँ सद्‌गुरु की प्यारे गुरुवर की
आरती करूँ गुरुवर की ।

जय गुरुदेव अमल अविनाशी, ज्ञानरूप अन्तर के वासी,
पग पग पर देते प्रकाश, जैसे किरणें दिनकर की ।
आरती करूँ गुरुवर की ॥ १ ॥

जब से शरण तुम्हारी आये, अमृत से मीठे फल पाये,
शरण तुम्हारी क्या है छाया, कल्पवृक्ष तरुवर की ।
आरती करूँ गुरुवर की ॥ २ ॥

ब्रह्मज्ञान के पूर्ण प्रकाशक, योगज्ञान के अटल प्रवर्तक
जय गुरु-चरण-सरोज मिटा दी, व्यथा हमारे उर की ।
आरती करूँ गुरुवर की ॥ ३ ॥

अन्धकार से हमें निकाला, दिखलाया है अमर उजाला,
कब से जाने छान रहे थे, खाक सुनो दर-दर की ।
आरती करूँ गुरुवर की ॥ ४ ॥

संशय मिटा विवेक कराया, भवसागर से पार लंघाया,
अमर प्रदीप जलाकर कर दी, निशा दूर इस तन की।
आरती करूँ गुरुवर की ॥ ५ ॥

भेदों बीच अभेद बताया, आवागमन विमुक्त कराया,
धन्य हुए हम पाकर धारा, ब्रह्मज्ञान निर्झर की।
आरती करूँ गुरुवर की ॥ ६ ॥

करो कृपा सद्गुरु जग-तारन, सत्पथ-दर्शक भ्रान्ति-निवारन,
जय हो नित्य ज्योति दिखलानेवाले लीलाधर की ।
आरती करूँ गुरुवर की ॥ ७ ॥
मुक्तानन्द हे सद्गुरु दाता, 'शक्तिपात' के दिव्य प्रदाता,
करके वास गणेशपुरी, भव-बाधा हर ली जन की ।
आरती करूँ गुरुवर की ॥ ८ ॥

आरती करूँ सद्गुरु की करूँ सद्गुरु की प्यारे गुरुवर की,
आरती करूँ गुरुवर की ॥ ९ ॥

ॐ चैतन्यं शाश्वतं शान्तं व्योमातीतं निरंजनम्।
नादबिंदुकलातीतं तस्मै श्री गुरवे नमः ॥

श्रीविष्णुसहस्रनाम

यस्य स्मरणमात्रेण जन्मसंसारबंधनात् ।
विमुच्यते नमस्तस्मै विष्णवे प्रभविष्णवे ॥ १ ॥
नमः समस्तभूतानामादिभूताय भूभृते ।
अनेकरूपरूपाय विष्णवे प्रभविष्णवे ॥ २ ॥

वैशम्पायन उवाच

श्रुत्वा धर्मानशेषेण पावनानि च सर्वशः ।
युधिष्ठिरः शान्तनवं पुनरेवाभ्यभाषत ॥ ३ ॥

युधिष्ठिर उवाच

किमेकं दैवतं लोके किं वाप्येकं परायणम् ।
स्तुवन्तः कं कमर्चन्तः प्राप्नुयुर्मानवाः शुभम् ॥ ४ ॥
को धर्मः सर्वधर्माणां भवतः परमो मतः ।
किं जपन्मुच्यते जन्तुर्जन्मसंसारबन्धनात् ॥ ५ ॥

भीष्म उवाच

जगत्प्रभुं देवदेवमनन्तं पुरुषोत्तमम् ।
स्तुवन्नामसहस्रेण पुरुषः सततोत्थितः ॥ ६ ॥
तमेव चार्चयन्नित्यं भक्त्या पुरुषमव्ययम् ।
ध्यायन्स्तुवन्नमस्यंश्च यजमानस्तमेव च ॥ ७ ॥
अनादिनिधनं विष्णुं सर्वलोकमहेश्वरम् ।
लोकाध्यक्षं स्तुवन्नित्यं सर्वदुःखातिगो भवेत् ॥ ८ ॥
ब्रह्मण्यं सर्वधर्मज्ञं लोकानां कीर्तिवर्धनम् ।
लोकनाथं महद्भूतं सर्वभूतभवोद्भवम् ॥ ९ ॥

एष मे सर्वधर्माणां धर्मोऽधिकतमो मतः।
यद्भक्त्या पुण्डरीकाक्षं स्तवैरर्चेन्नरः सदा ॥ १० ॥

परमं यो महत्तेजः परमं यो महत्तपः।
परमं यो महद्ब्रह्म परमं यः परायणम् ॥ ११ ॥

पवित्राणां पवित्रं यो मङ्गलानां च मङ्गलम्।
दैवतं देवतानां च भूतानां योऽव्ययः पिता ॥ १२ ॥

यतः सर्वाणि भूतानि भवन्त्यादि युगागमे।
यस्मिंश्च प्रलयं यान्ति पुनरेव युगक्षये ॥ १३ ॥

तस्य लोकप्रधानस्य जगन्नाथस्य भूपते।
विष्णोर्नामसहस्रं मे शृणु पापभयापहम् ॥ १४ ॥

यानि नामानि गौणानि विख्यातानि महात्मनः।
ऋषिभिः परिगीतानि तानि वक्ष्यामि भूतये ॥ १५ ॥
ऋषिर्नाम्नां सहस्रस्य वेदव्यासो महामुनिः।
छन्दोऽनुष्टुप् तथा देवो भगवान्देवकीसुतः ॥ १६ ॥

ॐ विष्णुं जिष्णुं महाविष्णुं प्रभविष्णुं महेश्वरम्।
अनेकरूपं दैत्यान्तं नमामि पुरुषोत्तमम् ॥ १७ ॥

श्रीवेदव्यास उवाच

ॐ अस्य श्रीविष्णोर्दिव्यसहस्रनामस्तोत्रमालामन्त्रस्य। श्रीभगवान् वेदव्यास ऋषिः। श्रीकृष्णः परमात्मा देवता। अनुष्टुप् छन्दः। आत्मयोनिः स्वयं जात इति बीजम्। देवकीनन्दनः स्रष्टेति शक्तिः। त्रिसामा सामगः सामेति हृदयम्। शङ्खभृन्नन्दकी चक्रीति कीलकम्। शार्ङ्गधन्वा गदाधर इत्यस्त्रम्। रथाङ्गपाणिरक्षोभ्य इति कवचम्। उद्भवः क्षोभणो देव इति परमो मन्त्रः। श्रीमहाविष्णुप्रीत्यर्थे विष्णोर्दिव्यसहस्रनामजपे विनियोगः ॥

अथ ध्यानम् ।

ॐ शान्ताकारं भुजगशयनं पद्मनाभं सुरेशं
विश्वाधारं गगनसदृशं मेघवर्णं शुभाङ्गम् ।
लक्ष्मीकान्तं कमलनयनं योगिभिर्ध्यानगम्यं
वन्दे विष्णुं भवभयहरं सर्वलोकैकनाथम् ॥

इति ध्यानम् ।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।
ॐ नमो भगवते सदाशिवाय ।
ॐ नमो भगवते मुक्तानन्दाय ।

ॐ विश्वं विष्णुर्वषट्कारो भूतभव्यभवत्प्रभुः ।
भूतकृद्भूतभृद्भावो भूतात्मा भूतभावनः ॥ १ ॥

पूतात्मा परमात्मा च मुक्तानां परमा गतिः ।
अव्ययः पुरुषः साक्षी क्षेत्रज्ञोऽक्षर एव च ॥ २ ॥

योगो योगविदां नेता प्रधानपुरुषेश्वरः ।
नारसिंहवपुः श्रीमान् केशवः पुरुषोत्तमः ॥ ३ ॥

सर्वः शर्वः शिवः स्थाणुर्भूतादिर्निधिरव्ययः ।
संभवो भावनो भर्ता प्रभवः प्रभुरीश्वरः ॥ ४ ॥

स्वयंभूः शंभुरादित्यः पुष्कराक्षो महास्वनः ।
अनादिनिधनो धाता विधाता धातुरुत्तमः ॥ ५ ॥

अप्रमेयो हृषीकेशः पद्मनाभोऽमरप्रभुः ।
विश्वकर्मा मनुस्त्वष्टा स्थविष्ठः स्थविरो ध्रुवः ॥ ६ ॥

अग्राह्यः शाश्वतः कृष्णो लोहिताक्षः प्रतर्दनः ।
प्रभूतस्त्रिककुब्धाम पवित्रं मङ्गलं परम् ॥ ७ ॥

ईशानः प्राणदः प्राणो ज्येष्ठः श्रेष्ठः प्रजापतिः ।
हिरण्यगर्भो भूगर्भो माधवो मधुसूदनः ॥ ८ ॥

ईश्वरो विक्रमी धन्वी मेधावी विक्रमः क्रमः ।
अनुत्तमो दुराधर्षः कृतज्ञः कृतिरात्मवान् ॥ ९ ॥

सुरेशः शरणं शर्म विश्वरेताः प्रजाभवः ।
अहः संवत्सरो व्यालः प्रत्ययः सर्वदर्शनः ॥ १० ॥

अजः सर्वेश्वरः सिद्धः सिद्धिः सर्वादिरच्युतः ।
वृषाकपिरमेयात्मा सर्वयोगविनिःसृतः ॥ ११ ॥

वसुर्वसुमनाः सत्यः समात्मा संमितः समः ।
अमोघः पुण्डरीकाक्षो वृषकर्मा वृषाकृतिः ॥ १२ ॥

रुद्रो बहुशिरा बभ्रुर्विश्वयोनिः शुचिश्रवाः ।
अमृतः शाश्वतस्थाणुर्वरारोहो महातपाः ॥ १३ ॥

सर्वगः सर्वविद्भानुर्विष्वक्सेनो जनार्दनः ।
वेदो वेदविदव्यङ्गो वेदाङ्गो वेदवित् कविः ॥ १४ ॥

लोकाध्यक्षः सुराध्यक्षो धर्माध्यक्षः कृताकृतः ।
चतुरात्मा चतुर्व्यूहश्चतुर्दंष्ट्रश्चतुर्भुजः ॥ १५ ॥

भ्राजिष्णुर्भोजनं भोक्ता सहिष्णुर्जगदादिजः ।
अनघो विजयो जेता विश्वयोनिः पुनर्वसुः ॥ १६ ॥

उपेन्द्रो वामनः प्रांशुरमोघः शुचिरूर्जितः ।
अतीन्द्रः संग्रहः सर्गो धृतात्मा नियमो यमः ॥ १७ ॥

वेद्यो वैद्यः सदायोगी वीरहा माधवो मधुः ।
अतीन्द्रियो महामायो महोत्साहो महाबलः ॥ १८ ॥

महाबुद्धिर्महावीर्यो महाशक्तिर्महाद्युतिः ।
अनिर्देश्यवपुः श्रीमानमेयात्मा महाद्रिधृक् ॥ १९ ॥

महेष्वासो महीभर्ता श्रीनिवासः सतांगतिः ।
अनिरुद्धः सुरानन्दो गोविन्दो गोविदां पतिः ॥ २० ॥

मरीचिर्दमनो हंसः सुपर्णो भुजगोत्तमः ।
हिरण्यनाभः सुतपाः पद्मनाभः प्रजापतिः ॥ २१ ॥

अमृत्युः सर्वदृक् सिंहः संधाता सन्धिमान् स्थिरः ।
अजो दुर्मर्षणः शास्ता विश्रुतात्मा सुरारिहा ॥ २२ ॥

गुरुर्गुरुतमो धाम सत्यः सत्यपराक्रमः ।
निमिषोऽनिमिषः स्रग्वी वाचस्पतिरुदारधीः ॥ २३ ॥

अग्रणीर्ग्रामणीः श्रीमान् न्यायो नेता समीरणः ।
सहस्रमूर्धा विश्वात्मा सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥ २४ ॥

आवर्तनो निवृत्तात्मा संवृतः संप्रमर्दनः ।
अहस्संवर्तको वह्निरनिलो धरणीधरः ॥ २५ ॥

सुप्रसादः प्रसन्नात्मा विश्वधृग्विश्वभुग्विभुः ।
सत्कर्ता सत्कृतः साधुर्जह्नुर्नारायणो नरः ॥ २६ ॥

असंख्येयोऽप्रमेयात्मा विशिष्टः शिष्टकृच्छुचिः ।
सिद्धार्थः सिद्धसंकल्पः सिद्धिदः सिद्धिसाधनः ॥ २७ ॥

वृषाही वृषभो विष्णुर्वृषपर्वा वृषोदरः ।
वर्धनो वर्धमानश्च विविक्तः श्रुतिसागरः ॥ २८ ॥

सुभुजो दुर्धरो वाग्मी महेन्द्रो वसुदो वसुः ।
नैकरूपो बृहद्रूपः शिपिविष्टः प्रकाशनः ॥ २९ ॥

ओजस्तेजोद्युतिधरः प्रकाशात्मा प्रतापनः ।
ऋद्धः स्पष्टाक्षरो मन्त्रश्चन्द्रांशुर्भास्करद्युतिः ॥ ३० ॥

अमृतांशूद्भवो भानुः शशबिन्दुः सुरेश्वरः ।
औषधं जगतः सेतुः सत्यधर्मपराक्रमः ॥ ३१ ॥

भूतभव्यभवन्नाथः पवनः पावनोऽनलः ।
कामहा कामकृत्कान्तः कामः कामप्रदः प्रभुः ॥ ३२ ॥

युगादिकृद्युगावर्तो नैकमायो महाशनः ।
अदृश्यो व्यक्तरूपश्च सहस्रजिदनन्तजित् ॥ ३३ ॥

इष्टो विशिष्टः शिष्टेष्टः शिखण्डी नहुषो वृषः ।
क्रोधहा क्रोधकृत्कर्ता विश्वबाहुर्महीधरः ॥ ३४ ॥

अच्युतः प्रथितः प्राणः प्राणदो वासवानुजः ।
अपांनिधिरधिष्ठानमप्रमत्तः प्रतिष्ठितः ॥ ३५ ॥

स्कन्दः स्कन्दधरो धुर्यो वरदो वायुवाहनः ।
वासुदेवो बृहद्भानुरादिदेवः पुरन्दरः ॥ ३६ ॥

अशोकस्तारणस्तारः शूरः शौरिर्जनेश्वरः ।
अनुकूलः शतावर्तः पद्मी पद्मनिभेक्षणः ॥ ३७ ॥

पद्मनाभोऽरविन्दाक्षः पद्मगर्भः शरीरभृत् ।
महर्धिर्ऋद्धो वृद्धात्मा महाक्षो गरुडध्वजः ॥ ३८ ॥

अतुलः शरभो भीमः समयज्ञो हविर्हरिः ।
सर्वलक्षणलक्षण्यो लक्ष्मीवान् समितिंजयः ॥ ३९ ॥

विक्षरो रोहितो मार्गो हेतुर्दामोदरः सहः ।
महीधरो महाभागो वेगवानमिताशनः ॥ ४० ॥

उद्भवः क्षोभणो देवः श्रीगर्भः परमेश्वरः ।
करणं कारणं कर्ता विकर्ता गहनो गुहः ॥ ४१ ॥

व्यवसायो व्यवस्थानः संस्थानः स्थानदो ध्रुवः ।
परर्द्धिः परमस्पष्टस्तुष्टः पुष्टः शुभेक्षणः ॥ ४२ ॥

रामो विरामो विरतो मार्गो नेयो नयोऽनयः ।
वीरः शक्तिमतां श्रेष्ठो धर्मो धर्मविदुत्तमः ॥ ४३ ॥

वैकुण्ठः पुरुषः प्राणः प्राणदः प्रणवः पृथुः ।
हिरण्यगर्भः शत्रुघ्नो व्याप्तो वायुरधोक्षजः ॥ ४४ ॥

ऋतुः सुदर्शनः कालः परमेष्ठी परिग्रहः ।
उग्रः संवत्सरो दक्षो विश्रामो विश्वदक्षिणः ॥ ४५ ॥

विस्तारः स्थावरस्थाणुः प्रमाणं बीजमव्ययम् ।
अर्थोऽनर्थो महाकोशो महाभोगो महाधनः ॥ ४६ ॥

अनिर्विण्णः स्थविष्ठोऽभूर्धर्मयूपो महामखः ।
नक्षत्रनेमिर्नक्षत्री क्षमः क्षामः समीहनः ॥ ४७ ॥

यज्ञ इज्यो महेज्यश्च क्रतुः सत्रं सतांगतिः ।
सर्वदर्शी विमुक्तात्मा सर्वज्ञो ज्ञानमुत्तमम् ॥ ४८ ॥

सुव्रतः सुमुखः सूक्ष्मः सुघोषः सुखदः सुहृत् ।
मनोहरो जितक्रोधो वीरबाहुर्विदारणः ॥ ४९ ॥

स्वापनः स्ववशो व्यापी नैकात्मा नैककर्मकृत् ।
वत्सरो वत्सलो वत्सी रत्नगर्भो धनेश्वरः ॥ ५० ॥

धर्मगुब्धर्मकृद्धर्मी सदसत्क्षरमक्षरम् ।
अविज्ञाता सहस्रांशुर्विधाता कृतलक्षणः ॥ ५१ ॥

गभस्तिनेमिः सत्त्वस्थः सिंहो भूतमहेश्वरः ।
आदिदेवो महादेवो देवेशो देवभृद्गुरुः ॥ ५२ ॥

उत्तरो गोपतिर्गोप्ता ज्ञानगम्यः पुरातनः ।
शरीरभूतभृद्भोक्ता कपीन्द्रो भूरिदक्षिणः ॥ ५३ ॥

सोमपोऽमृतपः सोमः पुरुजित्पुरुसत्तमः ।
विनयो जयः सत्यसंधो दाशार्हः सात्वतांपतिः ॥ ५४ ॥

जीवो विनयिता साक्षी मुकुन्दोऽमितविक्रमः ।
अम्भोनिधिरनन्तात्मा महोदधिशयोऽन्तकः ॥ ५५ ॥

अजो महार्हः स्वाभाव्यो जितामित्रः प्रमोदनः ।
आनन्दो नन्दनो नन्दः सत्यधर्मा त्रिविक्रमः ॥ ५६ ॥

महर्षिः कपिलाचार्यः कृतज्ञो मेदिनीपतिः ।
त्रिपदस्त्रिदशाध्यक्षो महाशृङ्गः कृतान्तकृत् ॥ ५७ ॥

महावराहो गोविन्दः सुषेणः कनकाङ्गदी ।
गुह्यो गभीरो गहनो गुप्तश्चक्रगदाधरः ॥ ५८ ॥

वेधाः स्वाङ्गोऽजितः कृष्णो दृढः संकर्षणोऽच्युतः ।
वरुणो वारुणो वृक्षः पुष्कराक्षो महामनाः ॥ ५९ ॥

भगवान् भगहानन्दी वनमाली हलायुधः ।
आदित्यो ज्योतिरादित्यः सहिष्णुर्गतिसत्तमः ॥ ६० ॥

सुधन्वा खण्डपरशुर्दारुणो द्रविणप्रदः ।
दिवस्पृक् सर्वदृग्व्यासो वाचस्पतिरयोनिजः ॥ ६१ ॥

त्रिसामा सामगः साम निर्वाणं भेषजं भिषक् ।
संन्यासकृच्छमः शान्तो निष्ठा शान्तिः परायणम् ॥ ६२ ॥

शुभाङ्गः शान्तिदः स्रष्टा कुमुदः कुवलेशयः ।
गोहितो गोपतिर्गोप्ता वृषभाक्षो वृषप्रियः ॥ ६३ ॥

अनिवर्ती निवृत्तात्मा संक्षेप्ता क्षेमकृच्छिवः ।
श्रीवत्सवक्षाः श्रीवासः श्रीपतिः श्रीमतां वरः ॥ ६४ ॥

श्रीदः श्रीशः श्रीनिवासः श्रीनिधिः श्रीविभावनः ।
श्रीधरः श्रीकरः श्रेयः श्रीमाँल्लोकत्रयाश्रयः ॥ ६५ ॥

स्वक्षः स्वङ्गः शतानन्दो नन्दिर्ज्योतिर्गणेश्वरः ।
विजितात्मा विधेयात्मा सत्कीर्तिश्छिन्नसंशयः ॥ ६६ ॥

उदीर्णः सर्वतश्चक्षुरनीशः शाश्वतः स्थिरः ।
भूशयो भूषणो भूतिर्विशोकः शोकनाशनः ॥ ६७ ॥
अर्चिष्मानर्चितः कुम्भो विशुद्धात्मा विशोधनः ।
अनिरुद्धोऽप्रतिरथः प्रद्युम्नोऽमितविक्रमः ॥ ६८ ॥

कालनेमिनिहा वीरः शौरिः शूरजनेश्वरः ।
त्रिलोकात्मा त्रिलोकेशः केशवः केशिहा हरिः ॥ ६९ ॥

कामदेवः कामपालः कामी कान्तः कृतागमः ।
अनिर्देश्यवपुर्विष्णुर्वीरोऽनन्तो धनंजयः ॥ ७० ॥

ब्रह्मण्यो ब्रह्मकृद् ब्रह्मा ब्रह्म ब्रह्मविवर्धनः ।
ब्रह्मविद्ब्राह्मणो ब्रह्मी ब्रह्मज्ञो ब्राह्मणप्रियः ॥ ७१ ॥

महाक्रमो महाकर्मा महातेजा महोरगः ।
महाक्रतुर्महायज्वा महायज्ञो महाहविः ॥ ७२ ॥

स्तव्यः स्तवप्रियः स्तोत्रं स्तुतिः स्तोता रणप्रियः ।
पूर्णः पूरयिता पुण्यः पुण्यकीर्तिरनामयः ॥ ७३ ॥

मनोजवस्तीर्थकरो वसुरेता वसुप्रदः ।
वसुप्रदो वासुदेवो वसुर्वसुमना हविः ॥ ७४ ॥

सद्गतिः सत्कृतिः सत्ता सद्भूतिः सत्परायणः ।
शूरसेनो यदुश्रेष्ठः सन्निवासः सुयामुनः ॥ ७५ ॥

भूतावासो वासुदेवः सर्वासुनिलयोऽनलः ।
दर्पहा दर्पदो दृप्तो दुर्धरोऽथापराजितः ॥ ७६ ॥

विश्वमूर्तिर्महामूर्तिर्दीप्तमूर्तिरमूर्तिमान ।
अनेकमूर्तिरव्यक्तः शतमूर्तिः शताननः ॥ ७७ ॥

एको नैकः सवः कः किं यत् तत्पदमनुत्तमम् ।
लोकबन्धुर्लोकनाथो माधवो भक्तवत्सलः ॥ ७८ ॥

सुवर्णवर्णो हेमाङ्गो वराङ्गश्चन्दनाङ्गदी ।
वीरहा विषमः शून्यो घृताशीरचलश्चलः ॥ ७९ ॥

अमानी मानदो मान्यो लोकस्वामी त्रिलोकधृक् ।
सुमेधा मेधजो धन्यः सत्यमेधा धराधरः ॥ ८० ॥

तेजोवृषो द्युतिधरः सर्वशस्त्रभृतां वरः ।
प्रग्रहो निग्रहो व्यग्रो नैकश्रृङ्गो गदाग्रजः ॥ ८१ ॥

चतुर्मूर्तिश्चतुर्बाहुश्चतुर्व्यूहश्चतुर्गतिः ।
चतुरात्मा चतुर्भावश्चतुर्वेदविदेकपात् ॥ ८२ ॥

समावर्तो निवृत्तात्मा दुर्जयो दुरतिक्रमः ।
दुर्लभो दुर्गमो दुर्गो दुरावासो दुरारिहा ॥ ८३ ॥

शुभाङ्गो लोकसारङ्गः सुतन्तुस्तन्तुवर्धनः ।
इन्द्रकर्मा महाकर्मा कृतकर्मा कृतागमः ॥ ८४ ॥

उद्भवः सुन्दरः सुन्दो रत्ननाभः सुलोचनः ।
अर्को वाजसनः शृङ्गी जयन्तः सर्वविज्जयी ॥ ८५ ॥
सुवर्णबिन्दुरक्षोभ्यः सर्ववागीश्वरेश्वरः ।
महाह्रदो महागर्तो महाभूतो महानिधिः ॥ ८६ ॥

कुमुदः कुन्दरः कुन्दः पर्जन्यः पावनोऽनिलः ।
अमृतांशोऽमृतवपुः सर्वज्ञः सर्वतोमुखः ॥ ८७ ॥

सुलभः सुव्रतः सिद्धः शत्रुजिच्छत्रुतापनः ।
न्यग्रोधोदुम्बरोऽश्वत्थश्चाणूरान्ध्रनिषूदनः ॥ ८८ ॥

सहस्रार्चिः सप्तजिह्वः सप्तैधाः सप्तवाहनः ।
अमूर्तिरनघोऽचिन्त्यो भयकृद्भयनाशनः ॥ ८९ ॥

अणुर्बृहत्कृशः स्थूलो गुणभृन्निर्गुणो महान् ।
अधृतः स्वधृतः स्वास्यः प्राग्वंशो वंशवर्धनः ॥ ९० ॥

भारभृत् कथितो योगी योगीशः सर्वकामदः ।
आश्रमः श्रमणः क्षामः सुपर्णो वायुवाहनः ॥ ९१ ॥

धनुर्धरो धनुर्वेदो दण्डो दमयिता दमः ।
अपराजितः सर्वसहो नियन्ता नियमो यमः ॥ ९२ ॥

सत्त्ववान् सात्त्विकः सत्यः सत्यधर्मपरायणः ।
अभिप्रायः प्रियार्होऽर्हः प्रियकृत् प्रीतिवर्धनः ॥ ९३ ॥

विहायसगतिर्ज्योतिः सुरुचिर्हुतभुग्विभुः ।
रविर्विरोचनः सूर्यः सविता रविलोचनः ॥ ९४ ॥

अनन्तो हुतभुग्भोक्ता सुखदो नैकजोऽग्रजः ।
अनिर्विण्णः सदामर्षी लोकाधिष्ठानमद्भुतः ॥ ९५ ॥

सनात्सनातनतमः कपिलः कपिरव्ययः ।
स्वस्तिदः स्वस्तिकृत्स्वस्ति स्वस्तिभुक् स्वस्तिदक्षिणः ॥ ९६ ॥

अरौद्रः कुण्डली चक्री विक्रम्यूर्जितशासनः ।
शब्दातिगः शब्दसहः शिशिरः शर्वरीकरः ॥ ९७ ॥

अक्रूरः पेशलो दक्षो दक्षिणः क्षमिणांवरः ।
विद्वत्तमो वीतभयः पुण्यश्रवणकीर्तनः ॥ ९८ ॥

उत्तारणो दुष्कृतिहा पुण्यो दुःस्वप्ननाशनः ।
वीरहा रक्षणः सन्तो जीवनः पर्यवस्थितः ॥ ९९ ॥

अनन्तरूपोऽनन्तश्रीर्जितमन्युर्भयापहः ।
चतुरस्रो गभीरात्मा विदिशो व्यादिशो दिशः ॥ १०० ॥

अनादिर्भूर्भुवो लक्ष्मीः सुवीरो रुचिराङ्गदः ।
जननो जनजन्मादिर्भीमो भीमपराक्रमः ॥ १०१ ॥

आधारनिलयो धाता पुष्पहासः प्रजागरः ।
ऊर्ध्वगः सत्पथाचारः प्राणदः प्रणवः पणः ॥ १०२ ॥

प्रमाणं प्राणनिलयः प्राणभृत्प्राणजीवनः ।
तत्त्वं तत्त्वविदेकात्मा जन्ममृत्युजरातिगः ॥ १०३ ॥

भूर्भुवःस्वस्तरुस्तारः सविता प्रपितामहः ।
यज्ञो यज्ञपतिर्यज्वा यज्ञाङ्गो यज्ञवाहनः ॥ १०४ ॥

यज्ञभृद् यज्ञकृद् यज्ञी यज्ञभुग् यज्ञसाधनः ।
यज्ञान्तकृद् यज्ञगुह्यमन्नमन्नाद एव च ॥ १०५ ॥

आत्मयोनिः स्वयंजातो वैखानः सामगायनः ।
देवकीनन्दनः स्रष्टा क्षितीशः पापनाशनः ॥ १०६ ॥

शङ्खभृन्नन्दकी चक्री शार्ङ्गधन्वा गदाधरः ।
रथाङ्गपाणिरक्षोभ्यः सर्वप्रहरणायुधः ॥ १०७ ॥

सर्वप्रहरणायुध ॐ नम इति ।

इतीदं कीर्तनीयस्य केशवस्य महात्मनः ।
नाम्नां सहस्रं दिव्यानामशेषेण प्रकीर्तितम् ॥ १ ॥

य इदं शृणुयान्नित्यं यश्चापि परिकीर्तयेत् ।
नाशुभं प्राप्नुयात्किंचित्सोऽमुत्रेह च मानवः ॥ २ ॥

वेदान्तगो ब्राह्मणः स्यात्क्षत्रियो विजयी भवेत् ।
वैश्यो धनसमृद्धः स्याच्छूद्रः सुखमवाप्नुयात् ॥ ३ ॥

धर्मार्थी प्राप्नुयाद्धर्ममर्थार्थी चार्थमाप्नुयात् ।
कामानवाप्नुयात्कामी प्रजार्थी चाप्नुयात्प्रजाम् ॥ ४ ॥

भक्तिमान् यः सदोत्थाय शुचिस्तद्गतमानसः ।
सहस्रं वासुदेवस्य नाम्नामेतत्प्रकीर्तयेत् ॥ ५ ॥

यशः प्राप्नोति विपुलं ज्ञातिप्राधान्यमेव च ।
अचलां श्रियमाप्नोति श्रेयः प्राप्नोत्यनुत्तमम् ॥ ६ ॥

न भयं क्वचिदाप्नोति वीर्यं तेजश्च विन्दति ।
भवत्यरोगो द्युतिमान्बलरूपगुणान्वितः ॥ ७ ॥

रोगार्तो मुच्यते रोगाद्बद्धो मुच्येत बन्धनात् ।
भयान्मुच्येत भीतस्तु मुच्येतापन्न आपदः ॥ ८ ॥

दुर्गाण्यतितरत्याशु पुरुषः पुरुषोत्तमम् ।
स्तुवन्नामसहस्रेण नित्यं भक्तिसमन्वितः ॥ ९ ॥

वासुदेवाश्रयो मर्त्यो वासुदेवपरायणः ।
सर्वपापविशुद्धात्मा याति ब्रह्म सनातनम् ॥ १० ॥

न वासुदेवभक्तानामशुभं विद्यते क्वचित् ।
जन्ममृत्युजराव्याधिभयं नैवोपजायते ॥ ११ ॥

इमं स्तवमधीयानः श्रद्धाभक्तिसमन्वितः ।
युज्येतात्मा सुखक्षान्तिश्रीधृतिस्मृतिकीर्तिभिः ॥ १२ ॥

न क्रोधो न च मात्सर्यं न लोभो नाशुभा मतिः ।
भवन्ति कृतपुण्यानां भक्तानां पुरुषोत्तमे ॥ १३ ॥

द्यौः सचन्द्रार्कनक्षत्रा खं दिशो भूर्महोदधिः ।
वासुदेवस्य वीर्येण विधृतानि महात्मनः ॥ १४ ॥

ससुरासुरगन्धर्वं सयक्षोरगराक्षसम् ।
जगद्वशे वर्ततेदं कृष्णस्य सचराचरम् ॥ १५ ॥

इन्द्रियाणि मनो बुद्धिः सत्त्वं तेजो बलं धृतिः ।
वासुदेवात्मकान्याहुः क्षेत्रं क्षेत्रज्ञ एव च ॥ १६ ॥

सर्वागमानामाचारः प्रथमं परिकल्प्यते ।
आचारप्रभवो धर्मो धर्मस्य प्रभुरच्युतः ॥ १७ ॥ ✓

ऋषयः पितरो देवा महाभूतानि धातवः ।
जङ्गमाजङ्गमं चेदं जगन्नारायणोद्भवम् ॥ १८ ॥

योगो ज्ञानं तथा सांख्यं विद्याः शिल्पादिकर्म च ।
वेदाः शास्त्राणि विज्ञानमेतत्सर्वं जनार्दनात् ॥ १९ ॥ ✓

एको विष्णुर्महद्भूतं पृथग्भूतान्यनेकशः ।
त्रीँल्लोकान्व्याप्य भूतात्मा भुंक्ते विश्वभुगव्ययः ॥ २० ॥

इमं स्तवं भगवतो विष्णोर्व्यासेन कीर्तितम् ।
पठेद्य इच्छेत्पुरुषः श्रेयः प्राप्तुं सुखानि च ॥ २१ ॥

विश्वेश्वरमजं देवं जगतः प्रभवाप्ययम् ।
भजन्ति ये पुष्कराक्षं न ते यान्ति पराभवम् ॥ २२ ॥

हरि ॐ तत् सत् इति श्रीमन्महाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामानुशासनिके पर्वणि दानधर्मेषु भीष्मयुधिष्ठिरसंवादे श्रीविष्णोर्दिव्यसहस्रनामस्तोत्रम् ।

श्रीशिवमहिम्नः स्तोत्रम्

गजाननं भूतगणादिसेवितं कपित्थजम्बूफलचारुभक्षणम् ।
उमासुतं शोकविनाशकारकं नमामि विघ्नेश्वरपादपङ्कजम् ॥

श्री पुष्पदंत उवाच

महिम्नः पारं ते परमविदुषो यद्यसदृशी
स्तुतिर्ब्रह्मादीनामपि तदवसन्नास्त्वयि गिरः ।
अथावाच्यः सर्वः स्वमतिपरिणामावधि गृणन्
ममाप्येषः स्तोत्रे हर निरपवादः परिकरः ॥ १ ॥

अतीतः पन्थानं तव च महिमा वाङ्मनसयो-
रतद्व्यावृत्त्या यं चकितमभिधत्ते श्रुतिरपि ।
स कस्य स्तोतव्यः कतिविधगुणः कस्य विषयः
पदे त्वर्वाचीने पतति न मनः कस्य न वचः ॥ २ ॥

मधुस्फीता वाचः परमममृतं निर्मितवत-
स्तव ब्रह्मन्किं वागपि सुरगुरोर्विस्मयपदम् ।
मम त्वेतां वाणीं गुणकथनपुण्येन भवतः
पुनामीत्यर्थेऽस्मिन् पुरमथन बुद्धिर्व्यवसिता ॥ ३ ॥

तवैश्वर्यं यत्तज्जगदुदयरक्षाप्रलयकृत्
त्रयीवस्तु व्यस्तं तिसृषु गुणभिन्नासु तनुषु ।
अभव्यानामस्मिन् वरद रमणीयामरमणीं
विहन्तुं व्याक्रोशीं विदधत इहैके जडधियः ॥ ४ ॥

किमीहः किं कायः स खलु किमुपायस्त्रिभुवनं
किमाधारो धाता सृजति किमुपादान इति च ।
अतर्क्यैश्वर्ये त्वय्यनवसरदुःस्थो हतधियः
कुतर्कोऽयं कांश्चिन्मुखरयति मोहाय जगतः ॥ ५ ॥

अजन्मानो लोकाः किमवयववन्तोऽपि जगता-
मधिष्ठातारं किं भवविधिरनादृत्य भवति ।
अनीशो वा कुर्याद्भुवनजनने कः परिकरो
यतो मन्दास्त्वां प्रत्यमरवर संशेरत इमे ॥ ६ ॥

त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च ।
रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव ॥ ७ ॥

महोक्षः खट्वाङ्गं परशुरजिनं भस्म फणिनः
कपालं चेतीयत्तव वरद तन्त्रोपकरणम् ।
सुरास्तां तामृद्धिं दधति तु भवद्भ्रूप्रणिहितां
न हि स्वात्मारामं विषयमृगतृष्णा भ्रमयति ॥ ८ ॥

ध्रुवं कश्चित् सर्वं सकलमपरस्त्वध्रुवमिदं
परो ध्रौव्याध्रौव्ये जगति गदति व्यस्तविषये ।
समस्तेऽप्येतस्मिन् पुरमथन तैर्विस्मित इव
स्तुवञ्जिह्रेमि त्वां न खलु ननु धृष्टा मुखरता ॥ ९ ॥

तवैश्वर्यं यत्नाद्यदुपरि विरिञ्चिर्हरिरधः
परिच्छेत्तुं यातावनलमनलस्कन्धवपुषः ।
ततो भक्तिश्रद्धाभरगुरुगृणद्भ्यां गिरिश यत्
स्वयं तस्थे ताभ्यां तव किमनुवृत्तिर्न फलति ॥ १० ॥

अयत्नादापाद्य त्रिभुवनमवैरव्यतिकरं
दशास्यो यद्बाहूनभृत रणकण्डूपरवशान् ।
शिरःपद्मश्रेणीरचितचरणाम्भोरुहबलेः
स्थिरायास्त्वद्भक्तेस्त्रिपुरहर विस्फूर्जितमिदम् ॥ ११ ॥

अमुष्य त्वत्सेवासमधिगतसारं भुजवनं
बलात्कैलासेऽपि त्वदधिवसतौ विक्रमयतः ।
अलभ्या पातालेऽप्यलसचलिताङ्गुष्ठशिरसि
प्रतिष्ठा त्वय्यासीद् ध्रुवमुपचितो मुह्यति खलः ॥ १२ ॥

यदृद्धिं सुत्राम्णो वरद परमोच्चैरपि सती-
मधश्चक्रे बाणः परिजनविधेयत्रिभुवनः ।
न तच्चित्रं तस्मिन्वरिवसितरि त्वच्चरणयो-
र्न कस्या उन्नत्यै भवति शिरसस्त्वय्यवनतिः ॥ १३ ॥

अकांडब्रह्माण्डक्षयचकितदेवासुरकृपा
विधेयस्यासीद्यस्त्रिनयन विषं संहृतवतः ।
स कल्माषः कंठे तव न कुरुते न श्रियमहो
विकारोऽपि श्लाघ्यो भुवनभयभंगव्यसनिनः ॥ १४ ॥

असिद्धार्था नैव क्वचिदपि सदेवासुरनरे
निवर्तन्ते नित्यं जगति जयिनो यस्य विशिखाः ।
स पश्यन्नीश त्वामितरसुरसाधारणमभूत्
स्मरः स्मर्तव्यात्मा न हि वशिषु पथ्यः परिभवः ॥ १५ ॥

मही पादाघाताद् व्रजति सहसा संशयपदं
पदं विष्णोर्भ्राम्यद् भुजपरिघरुग्णग्रहगणम् ।
मुहुर्द्यौर्दौःस्थ्यं यात्यनिभृतजटाताडिततटा
जगद्रक्षायै त्वं नटसि ननु वामैव विभुता ॥ १६ ॥

वियद्व्यापी तारागणगुणितफेनोद्गमरुचिः
प्रवाहो वारां यः पृषतलघुदृष्टः शिरसि ते ।
जगद्द्वीपाकारं जलधिवलयं तेन कृतमि-
त्यनेनैवोन्नेयं धृतमहिम दिव्यं तव वपुः ॥ १७ ॥

रथः क्षोणी यन्ता शतधृतिरगेन्द्रो धनुरथो
रथाङ्गे चन्द्रार्कौ रथचरणपाणिः शर इति ।
दिधक्षोस्ते कोऽयं त्रिपुरतृणमाडम्बरविधि-
र्विधेयैः क्रीडन्त्यो न खलु परतन्त्राः प्रभुधियः ॥ १८ ॥

हरिस्ते साहस्रं कमलबलिमाधाय पदयो-
र्यदेकोने तस्मिन्निजमुदहरन्नेत्रकमलम् ।
गतो भक्त्युद्रेकः परिणतिमसौ चक्रवपुषा
त्रयाणां रक्षायै त्रिपुरहर जागर्ति जगताम् ॥ १९ ॥

क्रतौ सुप्ते जाग्रत्त्वमसि फलयोगे क्रतुमतां
क्व कर्म प्रध्वस्तं फलति पुरुषाराधनमृते ।
अतस्त्वां संप्रेक्ष्य क्रतुषु फलदानप्रतिभुवं
श्रुतौ श्रद्धां बद्ध्वा दृढपरिकरः कर्मसु जनः ॥ २० ॥

क्रियादक्षो दक्षः क्रतुपतिरधीशस्तनुभृता-
मृषीणामार्त्विज्यं शरणद सदस्याः सुरगणाः ।
क्रतुभ्रंशस्त्वत्तः क्रतुफलविधानव्यसनिनो
ध्रुवं कर्तुः श्रद्धाविधुरमभिचाराय हि मखाः ॥ २१ ॥

प्रजानाथं नाथ प्रसभमभिकं स्वां दुहितरं
गतं रोहिद्भूतां रिरमयिषुमृष्यस्य वपुषा
धनुष्पाणेर्यातं दिवमपि सपत्राकृतममुं
त्रसन्तं तेऽद्यापि त्यजति न मृगव्याधरभसः ॥ २२ ॥

स्वलावण्याशंसा धृतधनुषमह्नाय तृणव-
त्पुरः प्लुष्टं दृष्ट्वा पुरमथन पुष्पायुधमपि ।
यदि स्त्रैणं देवी यमनिरत देहार्धघटना-
दवैति त्वामद्धा बत वरद मुग्धा युवतयः ॥ २३ ॥

श्मशानेष्वाक्रीडा स्मरहर पिशाचाः सहचरा-
श्चिताभस्मालेपः स्रगपि नृकरोटीपरिकरः ।
अमाङ्गल्यं शीलं तव भवतु नामैवमखिलं
तथापि स्मर्तॄणां वरद परमं मङ्गलमसि ॥ २४ ॥

मनः प्रत्यक्चित्ते सविधमवधायात्तमरुतः
प्रहृष्यद्रोमाणः प्रमदसलिलोत्सङ्गितदृशः ।
यदालोक्याह्लादं ह्रद इव निमज्ज्यामृतमये
दधत्यंतस्तत्त्वं किमपि यमिनस्तत् किल भवान् ॥ २५ ॥

त्वमर्कस्त्वं सोमस्त्वमसि पवनस्त्वं हुतवह-
स्त्वमापस्त्वं व्योम त्वमु धरणिरात्मा त्वमिति च ।
परिच्छिन्नामेवं त्वयि परिणता बिभ्रतु गिरं
न विद्मस्तत्तत्त्वं वयमिह तु यत्त्वं न भवसि ॥ २६ ॥

त्रयीं तिस्रो वृत्तीस्त्रिभुवनमथो त्रीनपि सुरा-
नकाराद्यैर्वर्णैस्त्रिभिरभिदधत्तीर्णविकृति ।
तुरीयं ते धाम ध्वनिभिरवरुन्धानमणुभिः
समस्तं व्यस्तं त्वां शरणद गृणात्योमिति पदम् ॥ २७ ॥

भवः शर्वो रुद्रः पशुपतिरथोग्रः सहमहां-
स्तथा भीमेशानाविति यदभिधानाष्टकमिदम् ।
अमुष्मिन्प्रत्येकं प्रविचरति देव श्रुतिरपि
प्रियायास्मै धाम्ने प्रविहितनमस्योऽस्मि भवते ॥ २८ ॥

नमो नेदिष्ठाय प्रियदव दविष्ठाय च नमो
नमः क्षोदिष्ठाय स्मरहर महिष्ठाय च नमः ।
नमो वर्षिष्ठाय त्रिनयन यविष्ठाय च नमो
नमः सर्वस्मै ते तदिदमितिसर्वाय च नमः ॥ २९ ॥

बहलरजसे विश्वोत्पत्तौ भवाय नमो नमः
प्रबलतमसे तत्संहारे हराय नमो नमः ।
जनसुखकृते सत्त्वोद्रिक्तौ मृडाय नमो नमः
प्रमहसि पदे निस्त्रैगुण्ये शिवाय नमो नमः ॥ ३० ॥

कृशपरिणति चेतः क्लेशवश्यं क्व चेदं
क्व च तव गुणसीमोल्लंघिनी शश्वदृद्धिः ।
इति चकितममन्दीकृत्य मां भक्तिराधा-
द्वरद चरणयोस्ते वाक्यपुष्पोपहारम् ॥ ३१ ॥

असितगिरिसमं स्यात्कज्जलं सिन्धुपात्रे
सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी ।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति ॥ ३२ ॥

असुरसुरमुनीन्द्रैरर्चितस्येन्दुमौले-
र्ग्रथितगुणमहिम्नो निर्गुणस्येश्वरस्य ।
सकलगणवरिष्ठः पुष्पदन्ताभिधानो
रुचिरमलघुवृत्तैः स्तोत्रमेतच्चकार ॥ ३३ ॥

अहरहरनवद्यं धूर्जटेः स्तोत्रमेत-
त्पठति परमभक्त्या शुद्धचित्तः पुमान् यः ।
स भवति शिवलोके रुद्रतुल्यस्तथाऽत्र
प्रचुरतरधनायुः पुत्रवान्कीर्तिमांश्च ॥ ३४ ॥

दीक्षा दानं तपस्तीर्थं योगयागादिकाः क्रियाः ।
महिम्नः स्तव पाठस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ ३५ ॥

आसमाप्तमिदं स्तोत्रं पुण्यं गन्धर्वभाषितम् ।
अनौपम्यं मनोहारि शिवमीश्वरवर्णनम् ॥ ३६ ॥

महेशान्नापरो देवो महिम्नो नापरा स्तुतिः ।
अघोरान्नापरो मन्त्रो नास्ति तत्त्वं गुरोः परम् ॥ ३७ ॥

कुसुमदशननामा सर्वगन्धर्वराजः
शिशुशशधरमौलेर्देवदेवस्य दासः ।
स खलु निजमहिम्नो भ्रष्ट एवास्य रोषा-
त्स्तवनमिदमकार्षीद्दिव्यदिव्यं महिम्नः ॥ ३८ ॥

सुरवरमुनिपूज्यं स्वर्गमोक्षैकहेतुं
पठति यदि मनुष्यः प्राञ्जलिर्नान्यचेताः ।
व्रजति शिवसमीपं किन्नरैः स्तूयमानः
स्तवनमिदममोघं पुष्पदन्तप्रणीतम् ॥ ३९ ॥

श्रीपुष्पदंतमुखपङ्कजनिर्गतेन
स्तोत्रेण किल्बिषहरेण हरप्रियेण ।
कण्ठस्थितेन पठितेन समाहितेन
सुप्रीणितो भवति भूतपतिर्महेशः ॥ ४० ॥

इत्येषा वाङ्मयी पूजा श्रीमच्छङ्करपादयोः ।
अर्पिता तेन देवेशः प्रीयतां मे सदाशिवः ॥ ४१ ॥

यदक्षरं पदं भ्रष्टं मात्राहीनं च यद्भवेत् ॥
तत्सर्वं क्षम्यतां देव प्रसीद परमेश्वर ॥ ४२ ॥

॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

शिवमानसपूजा

रत्नैः कल्पितमासनं हिमजलैः स्नानं च दिव्याम्बरं
नानारत्नविभूषितं मृगमदामोदाङ्कितं चन्दनम् ।
जातीचम्पकबिल्वपत्ररचितं पुष्पं च धूपं तथा
दीपं देव दयानिधे पशुपते हृत्कल्पितं गृह्यताम् ॥ १ ॥

सौवर्णे नवरत्नखण्डरचिते पात्रे घृतं पायसं
भक्ष्यं पञ्चविधं पयोदधियुतं रम्भाफलं पानकम् ।
शाकानामयुतं जलं रुचिकरं कर्पूरखण्डोज्ज्वलं
ताम्बूलं मनसा मया विरचितं भक्त्या प्रभो स्वीकुरु ॥ २ ॥

छत्रं चामरयोर्युगं व्यजनकं चादर्शकं निर्मलं
वीणाभेरिमृदङ्गकाहलकला गीतं च नृत्यं तथा ।
साष्टाङ्गं प्रणतिः स्तुतिर्बहुविधा ह्येतत्समस्तं मया
सङ्कल्पेन समर्पितं तव विभो पूजां गृहाण प्रभो ॥ ३ ॥

आत्मा त्वं गिरिजा मतिः सहचराः प्राणाः शरीरं गृहं
पूजा ते विषयोपभोगरचना निद्रा समाधिस्थितिः ।
सञ्चारः पदयोः प्रदक्षिणविधिः स्तोत्राणि सर्वा गिरो
यद्यत्कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भो तवाराधनम् ॥ ४ ॥ ✓

करचरणकृतं वाक्कायजं कर्मजं वा
श्रवणनयनजं वा मानसं वापराधम् ।
विहितमविहितं वा सर्वमेतत्क्षमस्व
जय जय करुणाब्धे श्रीमहादेव शम्भो ॥ ५ ॥ ✓

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचिता शिवमानसपूजा समाप्ता ।

चर्पटपञ्जरिकास्तोत्रम्

दिनमपि रजनी सायं प्रातः शिशिरवसंतौ पुनरायातः ।
कालः क्रीडति गच्छत्यायुस्तदपि न मुञ्चत्याशावायुः ॥ १ ॥

भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते ।
संप्राप्ते सन्निहिते मरणे नहि नहि रक्षति डुकृञ्करणे ॥ ध्रुवपदम् ॥

अग्रे वह्निः पृष्ठे भानुः रात्रौ चिबुकसमर्पितजानुः ।
करतलभिक्षः तरुतलवासस्तदपि न मुञ्चत्याशापाशः ।
भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते ॥ २ ॥

यावद्वित्तोपार्जनसक्त—स्तावन्निजपरिवारो रक्तः ।
पश्चाद्धावति जर्जरदेहे वार्तां पृच्छति कोऽपि न गेहे ।
भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते ॥ ३ ॥

जटिलो मुंडी लुञ्चितकेशः काषायांबरबहुकृतवेषः ।
पश्यन्नपि च न पश्यति मूढ उदरनिमित्तं बहुकृतवेषः ।
भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते ॥ ४ ॥

भगवद्गीता किंचिदधीता गङ्गाजललवकणिका पीता ।
सकृदपि यस्य मुरारिसमर्चा तस्य यमः किं कुरुते चर्चाम् ।
भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते ॥ ५ ॥

अङ्गं गलितं पलितं मुंडं दशनविहीनं जातं तुण्डम् ।
वृद्धो याति गृहीत्वा दंडं तदपि न मुञ्चत्याशापिंडम् ।
भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते ॥ ६ ॥

बालस्तावत्क्रीडासक्त—स्तरुणस्तावत्तरुणीरक्तः ।
वृद्धस्तावच्चिंतामग्नः तस्मिन् ब्रह्मणि कोऽपि न लग्नः ।
भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते ॥ ७ ॥

पुनरपि जननं पुनरपि मरणं पुनरपि जननीजठरे शयनम् ।
इह संसारे बहुदुस्तारे कृपयाऽपारे पाहि मुरारे ।
भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते ॥ ८ ॥

पुनरपि रजनी पुनरपि दिवसः पुनरपि पक्षः पुनरपि मासः ।
पुनरप्ययनं पुनरपि वर्षं तदपि न मुञ्चत्याशामर्षम् ।
भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते ॥ ९ ॥

वयसि गते कः कामविकारः शुष्के नीरे कः कासारः ।
नष्टे द्रव्ये कः परिवारो ज्ञाते तत्त्वे कः संसारः ।
भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते ॥ १० ॥

नारीस्तनभरनाभिनिवेशं मिथ्यामायामोहावेशम् ।
एतन्मांसवसादिविकारं मनसि विचारय वारंवारम् ।
भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते ॥ ११ ॥

कस्त्वं कोऽहं कुत आयातः का मे जननी को मे तातः ।
इति परिभावय सर्वमसारं विश्वं त्यक्त्वा स्वप्नविचारम् ।
भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते ॥ १२ ॥

गेयं गीतानामसहस्रं ध्येयं श्रीपतिरूपमजस्रम् ।
नेयं सज्जनसङ्गे चित्तं देयं दीनजनाय च वित्तम् ।
भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते ॥ १३ ॥

यावज्जीवो निवसति देहे कुशलं तावत्पृच्छति गेहे ।
गतवति वायौ देहापाये भार्या बिभ्यति तस्मिन्काये ।
भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते ॥ १४ ॥

सुखतः क्रियते रामाभोगः पश्चाद्धंत शरीरे रोगः ।
यद्यपि लोके मरणं शरणं तदपि न मुञ्चति पापाचरणम् ।
भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते ॥ १५ ॥

रथ्याचर्पटविरचितकन्थः पुण्यापुण्यविवर्जितपंथः ।
नाहं न त्वं नायं लोकस्तदपि किमर्थं क्रियते शोकः ।
भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते ॥ १६ ॥

कुरुते गंगासागरगमनं व्रतपरिपालनमथवा दानम् ।
ज्ञानविहीने सर्वमनेन मुक्तिर्न भवति जन्मशतेन ।
भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते ॥ १७ ॥

अन्नपूर्णास्तोत्रम्

नित्यानन्दकरी वराभयकरी सौन्दर्यरत्नाकरी
निर्धूताखिलघोरपावनकरी प्रत्यक्षमाहेश्वरी ।
प्रालेयाचलवंशपावनकरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी माताऽन्नपूर्णेश्वरी ॥ १ ॥

नानारत्नविचित्रभूषणकरी हेमांबराडंबरी
मुक्ताहारविलम्बमानविलसद्वक्षोजकुंभांतरी ।
काश्मीरागरुवासिता रुचिकरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी माताऽन्नपूर्णेश्वरी ॥ २ ॥

योगानन्दकरी रिपुक्षयकरी धर्मार्थनिष्ठाकरी
चन्द्रार्कानलभासमानलहरी त्रैलोक्यरक्षाकरी ।
सर्वैश्वर्यसमस्तवांछितकरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी माताऽन्नपूर्णेश्वरी ॥ ३ ॥

कैलासाचलकन्दरालयकरी गौरी उमा शंकरी
कौमारी निगमार्थगोचरकरी ॐकारबीजाक्षरी ।
मोक्षद्वारकपाटपाटनकरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी माताऽन्नपूर्णेश्वरी ॥ ४ ॥

दृश्यादृश्यप्रभूतवाहनकरी ब्रह्मांडभांडोदरी
लीलानाटकसूत्रभेदनकरी विज्ञानदीपांकुरी ।
श्रीविश्वेशमनःप्रसादनकरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी माताऽन्नपूर्णेश्वरी ॥ ५ ॥

उर्वी सर्वजनेश्वरी भगवती माताऽन्नपूर्णेश्वरी
वेणीनीलसमानकुन्तलहरी नित्यान्नदानेश्वरी ।
सर्वानन्दकरी सदा शुभकरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी माताऽन्नपूर्णेश्वरी ॥ ६ ॥

आदिक्षांत समस्तवर्णनकरी शंभोस्त्रिभावाकरी
काश्मीरी त्रिजनेश्वरी त्रिलहरी नित्यांकुरी शर्वरी ।
कामाकांक्षकरी जनोदयकरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी माताऽन्नपूर्णेश्वरी ॥ ७ ॥

देवी सर्वविचित्ररत्नरचिता दाक्षायणी सुन्दरी
वामा स्वादुपयोधरप्रियकरी सौभाग्यमाहेश्वरी ।
भक्ताभीष्टकरी दशाऽशुभहरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी माताऽन्नपूर्णेश्वरी ॥ ८ ॥

चन्द्रार्कानलकोटिकोटिसदृशा चन्द्रांशुबिम्बाधरी
चन्द्रार्काग्निसमानकुन्तलधरी चन्द्रार्कवर्णेश्वरी ।
मालापुस्तकपाशसांकुशधरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी माताऽन्नपूर्णेश्वरी ॥ ९ ॥

क्षत्रत्राणकरी महाऽभयकरी माता कृपासागरी
साक्षान्मोक्षकरी सदा शिवकरी विघ्नेश्वरी श्रीधरी ।
दक्षाक्रन्दकरी निरामयकरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी माताऽन्नपूर्णेश्वरी ॥ १० ॥

अन्नपूर्णे सदापूर्णे शंकरप्राणवल्लभे ।
ज्ञानवैराग्यसिद्ध्यर्थं भिक्षां देहि च पार्वति ॥ ११ ॥

माता मे पार्वती देवी पिता देवो महेश्वरः ।
बान्धवाः शिवभक्ताश्च स्वदेशो भुवनत्रयम् ॥ १२ ॥

चन्द्रशेखराष्टकम्

चन्द्रशेखर चन्द्रशेखर चन्द्रशेखर पाहि माम् ।
चन्द्रशेखर चन्द्रशेखर चन्द्रशेखर रक्ष माम् ॥ १ ॥

रत्नसानुशरासनं रजताद्रिशृंगनिकेतनं
सिंजिनीकृतपन्नगेश्वरमच्युताननसायकम् ।
क्षिप्रदग्धपुरत्रयं त्रिदिवालयैरभिवंदितं
चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः ॥ २ ॥

पंचपादपपुष्पगंधपदांबुजद्वयशोभितं
भाललोचनजातपावकदग्धमन्मथविग्रहम् ।
भस्मदिग्धकलेवरं भवनाशनं भवमव्ययं
चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः ॥ ३ ॥

मत्तवारणमुख्यचर्मकृतोत्तरीयमनोहरं
पंकजाननपद्मलोचनपूजिताङ्घ्रिसरोरुहम् ।
देवसिंधुतरंगसीकरसिक्तशुभ्रजटाधरं
चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः ॥ ४ ॥

यक्षराजसखं भगाक्षहरं भुजंगविभूषणं
शैलराजसुतापरिष्कृतचारुवामकलेवरम् ।
क्ष्वेडनीलगलं परश्वधधारिणं मृगधारणं
चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः ॥ ५ ॥

कुण्डलीकृतकुण्डलेश्वरकुण्डलं वृषवाहनं
नारदादिमुनीश्वरस्तुतवैभवं भुवनेश्वरम् ।
अन्धकांतकमाश्रितामरपादपं शमनांतकं
चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः ॥ ६ ॥

भेषजं भवरोगिणामखिलापदामपहारिणं
दक्षयज्ञविनाशनं त्रिगुणात्मकं त्रिविलोचनम् ।
भुक्तिमुक्तिफलप्रदं सकलाघसंघनिबर्हणं
चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः ॥ ७ ॥

भक्तवत्सलमर्चितं निधिमक्षयं हरिदंबरं
सर्वभूतपतिं परात्परमप्रमेयमनुत्तमम् ।
सोमवारिनभोहुताशनसोमपानिलखाकृतिं
चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः ॥ ८ ॥

विश्वसृष्टिविधायिनं पुनरेव पालनतत्परं
संहरंतमपि प्रपञ्चमशेषलोकनिवासिनम् ।
क्रीडयंतमहर्निशं गणनाथयूथसमन्वितं
चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः ॥ ९ ॥

मृत्युभीतमृकंडसूनुकृतस्तवं शिवसन्निधौ
यत्र कुत्र च यः पठेन्नहि तस्य मृत्युभयं भवेत् ।
पूर्णमायुररोगितामखिलार्थसम्पदमादरं
चन्द्रशेखर एव तस्य ददाति मुक्तिमयत्नतः ॥ १० ॥

द्वादशपञ्जरिकास्तोत्रम्

मूढ जहीहि धनागमतृष्णां कुरु सद्बुद्धिं मनसि वितृष्णाम् ।
यल्लभसे निजकर्मोपात्तं वित्तं तेन विनोदय चित्तम् ॥ १ ॥

अर्थमनर्थं भावय नित्यं नास्ति ततः सुखलेशः सत्यम् ।
पुत्रादपि धनभाजां भीतिः सर्वत्रैषा विहिता नीतिः ॥ २ ॥

का ते कान्ता कस्ते पुत्रः संसारोऽयमतीव विचित्रः ।
कस्य त्वं कः कुत आयातस्तत्त्वं चिन्तय यदिदं भ्रातः ॥ ३ ॥ ✓

मा कुरु जनधनयौवनगर्वं हरति निमेषात्कालः सर्वम् ।
मायामयमिदमखिलं हित्वा ब्रह्मपदं त्वं प्रविश विदित्वा ॥ ४ ॥ ✓

कामं क्रोधं मोहं लोभं त्यक्त्वात्मानं भावय कोऽहम् ।
आत्मज्ञानविहीना मूढास्ते पच्यन्ते नरकनिगूढाः ॥ ५ ॥

सुरमंदिरतरुमूलनिवासः शय्या भूतलमजिनं वासः ।
सर्वपरिग्रहभोगत्यागः कस्य सुखं न करोति विरागः ॥ ६ ॥

शत्रौ मित्रे पुत्रे बन्धौ मा कुरु यत्नं विग्रहसन्धौ ।
भव समचित्तः सर्वत्र त्वं वाञ्छस्यचिराद्यदि विष्णुत्वम् ॥ ७ ॥

त्वयि मयि चान्यत्रैको विष्णुर्व्यर्थं कुप्यसि सर्वसहिष्णुः ।
सर्वस्मिन्नपि पश्यात्मानं सर्वत्रोत्सृज भेदज्ञानम् ॥ ८ ॥

प्राणायामं प्रत्याहारं नित्यानित्यविवेकविचारम् ।
जाप्यसमेतसमाधिविधानं कुर्ववधानं महदवधानम् ॥ ९ ॥

नलिनीदलगतसलिलं तरलं तद्वज्जीवितमतिशयचपलम् ।
विद्धि व्याध्यभिमानग्रस्तं लोकं शोकहतं च समस्तम् ॥ १० ॥

का तेऽष्टादशदेशे चिन्ता वातुल तव किं नास्ति नियन्ता।
यस्त्वां हरते सुदृढनिबद्धं बोधयति प्रभवादिविरुद्धम् ॥ ११॥

गुरुचरणाम्बुजनिर्भरभक्तः संसारादचिराद्भवमुक्तः
सेन्द्रियमानसनियमादेवं द्रक्ष्यसि निजहृदयस्थं देवम् ॥ १२ ॥

द्वादशपञ्जरिकामय एषः शिष्याणां कथितो ह्युपदेशः ।
येषां चित्ते नैव विवेकस्ते पच्यन्ते नरकमनेकम् ॥ १३ ॥

निर्वाणषट्कम्

मनोबुद्ध्यहंकारचित्तानि नाहं
न च श्रोत्रजिह्वे न च घ्राणनेत्रे ।
न च व्योम भूमिर्न तेजो न वायु-
श्चिदानंदरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥ १ ॥

न च प्राणसंज्ञो न वै पंचवायु-
र्न वा सप्तधातुर्न वा पंचकोशः ।
न वाक्पाणिपादं न चोपस्थपायू
चिदानंदरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥ २ ॥

न मे द्वेषरागौ न मे लोभमोहौ
मदो नैव मे नैव मात्सर्यभावः ।
न धर्मो न चार्थो न कामो न मोक्ष-
श्चिदानंदरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥ ३ ॥

न पुण्यं न पापं न सौख्यं न दुःखं
न मंत्रो न तीर्थं न वेदा न यज्ञाः ।
अहं भोजनं नैव भोज्यं न भोक्ता
चिदानंदरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥ ४ ॥

न मृत्युर्न शंका न मे जातिभेदः
पिता नैव मे नैव माता च जन्म ।
न बंधुर्न मित्रं गुरुर्नैव शिष्य-
श्चिदानंदरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥ ५ ॥

अहं निर्विकल्पो निराकाररूपो
विभुत्वाच्च सर्वत्र सर्वेन्द्रियाणाम् ।
न चासंगतं नैव मुक्तिर्न मेय-
श्चिदानंदरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥ ६ ॥

गीता–माहात्म्यम्

(१)

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः ।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत् ॥ १ ॥

सारथ्यमर्जुनस्यादौ कुर्वन् गीतामृतं ददौ ।
लोकत्रयोपकराय तस्मै कृष्णात्मने नमः ॥ २ ॥

संसारसागरं घोरं तर्तुमिच्छति यो नरः ।
गीतानावं समासाद्य पारं यातु सुखेन सः ॥ ३ ॥

गीताज्ञानं श्रुतं नैव सदैवाभ्यासयोगतः ।
मोक्षमिच्छति मूढात्मा याति बालकहास्यताम् ॥ ४ ॥

ये शृण्वन्ति पठन्त्येत्र गीताशास्त्रमहर्निशम् ।
न ते वै मानुषा ज्ञेया देवरूपा न संशयः ॥ ५ ॥

गीतायाश्च न जानाति पठनं नैव पाठनम् ।
स एव मानुषे लोके मोघकर्मकरो भवेत् ॥ ६ ॥

यस्माद्गीता न जानाति नाधमस्तत्परो जनः ।
धिक् तस्य मानुषं देहं विज्ञानं कुलशीलताम् ॥ ७ ॥

गीतार्थं न विजानाति नाधमस्तत्परो जनः ।
धिक् शरीरं शुभं शीलं विभवं तद्गृहाश्रमम् ॥ ८ ॥

गीताशास्त्रं न जानाति नाधमस्तत्परो जनः ।
धिक् प्रारब्धं प्रतिष्ठां च पूजां मानं महत्तमम् ॥ ९ ॥

गीताशास्त्रे मतिर्नास्ति सर्वं तन्निष्फलं जगुः ।
धिक् तस्य ज्ञानदातारं व्रतं निष्ठां तपो यशः ॥ १० ॥

शालग्रामशिलायां वा देवागारे शिवालये ।
तीर्थे नद्यां पठन् गीतां सौभाग्यं लभते ध्रुवम् ॥ ११ ॥

देवकीनन्दनः कृष्णो गीतापाठेन तुष्यति ।
यथा न वेदैर्दानेन यज्ञतीर्थव्रतादिभिः ॥ १२ ॥

(२)

योगिस्थाने सिद्धपीठे शिलाग्रे सत्सभासु च ।
यज्ञे च विष्णुभक्ताग्रे पठन् सिद्धिं परां लभेत् ॥ १ ॥

गीतापाठं च श्रवणं यः करोति दिने दिने ।
क्रतवो वाजिमेधाद्याः कृतास्तेन सदक्षिणाः ॥ २ ॥

यस्यान्तःकरणं नित्यं गीतायां रमते सदा।
स साग्निकः सदा जापी क्रियावान् स च पण्डितः ॥ ३ ॥

दर्शनीयः स धनवान् स योगी ज्ञानवानपि।
स एव याज्ञिको याजी सर्ववेदार्थदर्शकः ॥ ४ ॥

गीतायाः पुस्तकं यत्र नित्यपाठश्च वर्तते।
तत्र सर्वाणि तीर्थानि प्रयागादीनि भूतले ॥ ५ ॥

निवसन्ति सदा देहे देहशेषेऽपि सर्वदा।
सर्वे देवाश्च ऋषयो योगिनो देहरक्षकाः ॥ ६ ॥

गीता मे हृदयं पार्थ गीता मे सारमुत्तमम्।
गीता मे ज्ञानमत्युग्रं गीता मे ज्ञानमव्ययम् ॥ ७ ॥

गीता मे चोत्तमं स्थानं गीता मे परमं पदम्।
गीता मे परमं गुह्यं गीता मे परमो गुरुः ॥ ८ ॥

गीताश्रयेऽहं तिष्ठामि गीता मे परमं गृहम्।
गीताज्ञानं समाश्रित्य त्रिलोकीं पालयाम्यहम् ॥ ९ ॥

गीता मे परमा विद्या ब्रह्मरूपा न संशयः।
अर्धमात्रा परा नित्यमनिर्वाच्यपदात्मिका ॥ १० ॥

गीतानामानि वक्ष्यामि गुह्यानि शृणु पाण्डव।
कीर्तनात्सर्वपापानि विलयं यान्ति तत्क्षणात् ॥ ११ ॥

गंगा गीता च गायत्री सीता सत्या सरस्वती।
ब्रह्मवल्ली ब्रह्मविद्या त्रिसन्ध्या मुक्तिगेहिनी ॥ १२ ॥

अर्धमात्रा चिदानन्दा भवघ्नी भ्रान्तिनाशिनी।
वेदत्रयी परानन्दा तत्त्वार्थज्ञानमञ्जरी ॥ १३ ॥

इत्येतानि जपेन्नित्यं नरो निश्चलमानसः ।
ज्ञानसिद्धिं लभेन्नित्यं तथान्ते परमं पदम् ॥ १४ ॥

(३)

जनः संसारदुःखार्तो गीताज्ञानं समालभेत् ।
पीत्वा गीतामृतं लोके लब्ध्वा भक्तिं सुखी भवेत् ॥ १ ॥

योऽभिमानेन गर्वेण गीतानिन्दां करोति च ।
स याति नरकं घोरं यावदाभूतसंप्लवम् ॥ २ ॥

अहङ्कारेण मूढात्मा गीतार्थं नैव मन्यते ।
कुम्भीपाकेषु पच्येत यावत्कल्पक्षयो भवेत् ॥ ३ ॥

न बन्धोऽस्ति न मोक्षोऽस्ति ब्रह्मैवास्ति निरामयम् ।
नैकमस्ति न च द्वित्वं सच्चित्कारं विजृम्भते ॥ ४ ॥

गीतासारमिदं शास्त्रं सर्वशास्त्रसुनिश्चितम् ।
यत्र स्थितं ब्रह्मज्ञानं वेदशास्त्रसुनिश्चितम् ॥ ५ ॥

इदं शास्त्र मया प्रोक्तं गुह्यवेदार्थदर्पणम् ।
यः पठेत्प्रयतो भूत्वा स गच्छेद्विष्णुशाश्वतम् ॥ ६ ॥

सर्ववेदमयी गीता सर्वधर्ममयो मनु ।
सर्वतीर्थमयी गंगा सर्वदेवमयो हरिः ॥ ७ ॥ ✓

कृष्णवृक्षसमुद्भूता गीतामृतहरीतकी ।
मानुषैः किं न खाद्येत कलौ मलविरेचनी ॥ ८ ॥

गङ्गा गीता तथा भिक्षुः कपिलाश्वत्थसेवनम् ।
वासरं पद्मनाभस्य पावनं किं कलौ युगे ॥ ९ ॥

भारतामृतसर्वस्वं विष्णोर्वक्त्राद्विनिःसृतम् ।
गीतागङ्गोदकं पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते ॥ १० ॥

योऽधीते विष्णुपर्वाहे गीतां श्रीहरिवासरे ।
स्वपञ्जाग्रच्चलंस्तिष्ठञ्छत्रुभिर्न स हीयते ॥ ११ ॥

एकं शास्त्रं देवकीपुत्रगीतमेको देवो देवकीपुत्र एव ।
एको मन्त्रस्तस्य नामानि यानि कर्माप्येकं तस्य देवस्य सेवा ॥१२॥

सायंप्रातः की आरती

ॐ नमः पार्वतीपतये हर हर हर महादेव ।

गणेशपुरी योगभूमी पवित्र
तिथें नांदतो योगिराजा समर्थ ।
तया आठवीतां परमानंद प्राप्ति,
नमस्कार माझा श्रीमुक्तानंदासी ॥

आरती

आरती अवधूता जय जय आरती गुरुनाथा ।। ध्रु० ॥
ज्ञान-दान देउनि भक्ता (२) सुख देसी नित्या । जय जय....
मी-तूंपणाचे भाव हरपुनी (२) समता दे चित्ता । जय जय....
नित्यानन्द तूंचि दत्त (२) हरिहर जगत्राता । जय जय....
मुक्तानंद म्हणे श्रीगुरुदेवा (२) तूंचि मातापिता । जय जय....

प्रार्थना

मागणें तें आहे एक तुझ्यापाशीं देशील तरी पाहीं श्रीगुरुनाथा ।
सर्वदा वाचे वदो नित्यानंद नाम सर्वां भूतीं मैत्री आणि ,मुदिता ।
या जगीं घडो अनवरत विश्वबंधुत्वप्रेम चित्तपूर्ण स्थिरता ।
मुक्तानन्द म्हणे श्रीगुरुनाथा नाश होऊं दे या जगाची विषमता ॥१॥

गजाननं भूतगणादिसेवितं कपित्थजम्बूफलचारुभक्षणम् ।
उमासुतं शोकविनाशकारकं नमामि विघ्नेश्वरपादपङ्कजम् ॥ २ ॥

हरिः ॐ

ॐ नमः शिवाय गुरवे सच्चिदानंदमूर्तये ।
निष्प्रपंचाय शान्ताय निरालम्बाय तेजसे ॥ ३ ॥

नित्यानन्दाय गुरवे शिष्यसंसारहारिणे ।
भक्तकार्यैकदेहाय नमस्ते चित्सदात्मने ॥ ४ ॥

ॐ वन्दे देवमुमापतिं सुरगुरुं वन्दे जगत्कारणं
वन्दे पन्नगभूषणं मृगधरं वन्दे पशूनां पतिम् ।
वन्दे सूर्यशशांकवह्निनयनं वन्दे मुकुंदप्रियं
वन्दे भक्तजनाश्रयं च वरदं वन्दे शिवं शंकरम् ॥ ५ ॥

शान्तं पद्मासनस्थं शशिधरमुकुटं पंचवक्त्रं त्रिनेत्रं
शूलं वज्रं च खड्गं परशुमभयदं दक्षिणाङ्गे वहन्तम् ।
नागं पाशं च घण्टां डमरुकसहितं साङ्कुशं वामभागे
नानाऽलंकारदीप्तं स्फटिकमणिनिभं पार्वतीशं नमामि ॥ ६ ॥

कर्पूरगौरं करुणावतारं संसारसारं भुजगेन्द्रहारम् ।
सदा वसन्तं हृदयारविन्दे भवं भवानीसहितं नमामि ॥ ७ ॥

असितगिरिसमं स्यात्कज्जलं सिन्धुपात्रे
सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी ।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति ॥ ८ ॥

त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देवदेव ॥ ९ ॥

करचरणकृतं वाक्कायजं कर्मजं वा
श्रवणनयनजं वा मानसं वाऽपराधम् ।
विहितमविहितं वा सर्वमेतत् क्षमस्व
जय जय करुणाब्धे श्रीमहादेव शम्भो ॥ १० ॥

चन्द्रोद्भासितशेखरे स्मरहरे गङ्गाधरे शङ्करे
सर्पैर्भूषितकण्ठकर्णविवरे नेत्रोत्थवैश्वानरे
दन्तित्वक्कृतसुन्दराम्बरधरे त्रैलोक्यसारे हरे
मोक्षार्थं कुरु चित्तवृत्तिमचलामन्यैस्तु किं कर्मभिः ॥ ११ ॥

हरिः ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि ।
तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् ॥ १२ ॥

ॐ नमोऽस्त्वनन्ताय सहस्रमूर्तये सहस्रपादाऽक्षिशिरोरुबाहवे ।
सहस्रनाम्ने पुरुषाय शाश्वते सहस्रकोटीयुगधारिणे नमः ॥ १३ ॥

विष्णुब्रह्मेंद्रदेवैः रजतगिरितटात्प्रार्थितो योऽवतीर्य
शाक्याद्युद्दामकण्ठीरवनखरकराघातसञ्जातमूर्च्छाम् ।
छंदोधेनुं यतींद्रः प्रकृतिमगमयत्सूक्तिपीयूषवर्षैः
सोऽयं श्रीशंकराचार्यो भवद्रवदहनात्पातु लोकानजस्रम् ॥ १४ ॥

पूर्णः पीयूषभानुर्भवमरुतपनोद्दामतापाकुलानां
प्रौढाज्ञानान्धकारावृतविषमपथभ्राम्यतामंशुमाली ।
कल्पः शाखी यतीनां विगतधनसुतादीषणानां सदा नः
पायाच्छ्रीपद्मपादादिममुनिसहितः श्रीमदाचार्यवर्यः ॥ १५ ॥

ब्रह्मानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिं
द्वन्द्वातीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादिलक्ष्यम् ।
एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधीसाक्षिभूतं
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तं नमामि ॥ १६ ॥

नारायणं पद्मभवं वसिष्ठं शक्तिं च तत्पुत्रपराशरं च ।
व्यासं शुकं गौडपदं महान्तं गोविंदयोगींद्रमथास्य शिष्यम् ।
श्रीशंकराचार्यमथास्य पद्मपादं च हस्तामलकं च शिष्यम् ।
तं तोटकं वार्तिककारमन्यानस्मद्गुरून् संततमानतोऽस्मि ॥ १७ ॥

विश्वं दर्पणदृश्यमाननगरीतुल्यं निजान्तर्गतं
पश्यन्नात्मनि मायया बहिरिवोद्भूतं यथा निद्रया ।
यः साक्षात्कुरुते प्रबोधसमये स्वात्मानमेवाद्वयं
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥ १८ ॥

अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् ।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ १९ ॥

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुः साक्षात्परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ २० ॥

श्रुतिस्मृतिपुराणानामालयं करुणालयम्
नमामि भगवत्पादं शंकरं लोकशंकरम् ॥ २१ ॥

शंकरं शंकराचार्यं केशवं बादरायणम् ।
सूत्रभाष्यकृतौ वन्दे भगवन्तौ पुनः पुनः ॥ २२ ॥

ईश्वरो गुरुरात्मेति मूर्तिभेदविभागिने ।
व्योमवद् व्याप्तदेहाय दक्षिणामूर्तये नमः ॥ २३ ॥

हरिः ॐ यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥ २४ ॥

ॐ राजाधिराजाय प्रसह्यसाहिने नमो वयं वैश्रवणाय कुर्महे ॥
स मे कामान् कामकामाय मह्यं कामेश्वरो वैश्रवणो ददातु ॥
कुबेराय वैश्रवणाय महाराजाय नमः ॥ २५ ॥

ॐ विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात् ।
सम्बाहुभ्यां धमति सम्पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन् देव एकः ॥ २६ ॥

नानासुगन्धपुष्पाणि यथाकालोद्भवानि च ।
पुष्पाञ्जलिर्मया दत्तं गृहाण परमेश्वर ॥ २७ ॥

इत्येषा वाङ्मयी पूजा श्रीमच्छंकरपादयोः ।
अर्पिता तेन देवेशः प्रीयतां मे सदाशिवः ॥ २८ ॥

यदक्षरं पदं भ्रष्टं मात्राहीनं च यद् भवेत् ।
तत्सर्वं क्षम्यतां देव प्रसीद परमेश्वर ॥ २९ ॥

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥ ३० ॥

॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

उपनिषद् मन्त्र

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव ।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च ॥ ३१ ॥

वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च ।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च ॥ ३२ ॥

सूर्यो यथा सर्व लोकस्य चक्षुर्न लिप्यते चाक्षुषैर्बाह्यदोषैः ।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यः ॥ ३३ ॥

एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधा यः करोति ।
तं आत्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् ॥३४॥

नित्योऽनित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामान् ।
तं आत्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां शान्तिः शाश्वतीर्नेतरेषाम् ॥३५॥

शुक उवाच

महाप्रसादे गोविन्दे नाम्नि ब्रह्मणि वैष्णवे ।
स्वल्पपुण्यवतां राजन् विश्वासो नैव जायते ॥ ३६ ॥

यं शैवाः समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो
बौद्धा बुद्ध इति प्रमाणपटवः कर्तेति नैयायिकाः ।

अर्हन्नित्यथ जैनशासनरताः कर्मेति मीमांसकाः
सोऽयं वो विदधातु वाञ्छितफलं त्रैलोक्यनाथो हरिः ॥ ३७ ॥

न देशनियमो राजन् न कालनियमस्तथा ।
विद्यते नात्र संदेहो विष्णुनामानुकीर्तने ॥ ३८ ॥

कालोऽस्ति यज्ञदाने वा स्नाने कालोऽस्ति वा जपे ।
विष्णुसंकीर्तने कालो नास्त्यत्र पृथिवीपते ॥ ३९ ॥

निकटमेव दृश्यते कृतांतनगरं ध्रुवम् ।
शिवं स्मर शिवं ध्याहि शिवं चिन्तय सर्वदा ॥ ४० ॥

अहं शिवः शिवश्चायं त्वं चापि शिव एव हि ।
सर्वं शिवमयं ब्रह्म शिवात्परं न किंचन ॥ ४१ ॥

सूक्ष्मातिसूक्ष्मं कलिलस्य मध्ये विश्वस्य स्रष्टारमनेकरूपम् ।
विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं ज्ञात्वा शिवं शान्तिमत्यंतमेति ॥ ४२ ॥

सर्वगं सर्वकर्तारं सर्वत्र सर्वावभासकम् ।
सर्वावलंबनं शान्तं शिवं पूर्णं भजाम्यहम् ॥ ४३ ॥

सर्गादिकाले भगवान्विरञ्चि-
रुपास्यैनं सर्गसामर्थ्यमाप ।
तुतोष चित्ते वाञ्छितार्थांश्च लब्ध्वा
धन्यः सोपास्योपासको भवति धाता ॥ ४४ ॥

कुलं पवित्रं पितरः समुद्धृता वसुन्धरा तेन च पाविता द्विजाः ।
सनातनोऽनादिरनंतविग्रहो हृदि स्थितो यस्य सदैव शंकरः ॥ ४५ ॥

शिबिरुवाच

सर्वेऽत्र सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखमाप्नुयात् ॥ ४६ ॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

धुन— हरे राम हरे राम
राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण
कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

हरिः ॐ तत्सत्, हरिः ॐ तत्सत्, हरिः ॐ तत्सत् ॥

भजन

गुरुदेव हमारा प्यारा, है जीवन को आधार ॥ ध्रुव ॥

गुरुदेव की है अपार शक्ति, जीवन को है मिलती स्फूर्ति ।
मिटे मैल सब मन के पार, है जीवन को आधार ॥ १ ॥

उनको अपना जीवन जानो, तनमनधन सब उनको मानो ।
वो ही लगावे पार, है जीवन को आधार ॥ २ ॥

मुक्तानंद शरण जो जावे, बोध उजाला सो ही पावे ।
मुक्त होत है निर्धार, है जीवन को आधार ॥ ३ ॥

नित्यानंद कहै सब आओ, श्रीगुरुदेव नाम नित गाओ ।
हो भवभय से पार, है जीवन को आधार ॥ ४ ॥

ज्योत से ज्योत जगावो

ज्योत से ज्योत जगावो, सद्‌गुरु ज्योत से ज्योत जगावो;
मेरा अंतर तिमिर मिटावो, सद्‌गुरु ज्योत से ज्योत जगावो ।

हे योगेश्वर, हे ज्ञानेश्वर, हे सर्वेश्वर, हे परमेश्वर,
निज कृपा बरसावो....सद्‌गुरु ज्योत से....

हम बालक तेरे द्वारपे आये
मंगल दरस दिखावो....सद्‌गुरु ज्योत से....

शीश झुकाय करें तेरी आरती
प्रेमसुधा बरसावो....सद्‌गुरु ज्योत से....

अन्तर में युग युग से सोई
चितिशक्ति को जगावो....सद्गुरु ज्योत से....

सांची ज्योत जगे हृदय में
सोऽहं नाद जगावो....सद्गुरु ज्योत से....

जीवन मुक्तानंद अविनाशी
चरनन शरन लगावो....सद्गुरु ज्योत से....

त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बंधुश्च सखा त्वमेव
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देवदेव ॥

दूर करो दुःख दर्द सब, दया करो भगवान।
मन मंदिर में उज्ज्वल हो तेरा निर्मल ज्ञान।

जिस घर में हो आरती चरणकमल चित लाग।
तहाँ हरि वासा करे ज्योत अनंत जगाय।

जहाँ भक्त कीर्तन करें, बहे प्रेम दरियाय।
तहाँ हरि श्रवण करें सत्य लोक से आय।

सब कुछ दिया आपने, भेंट करूं क्या नाथ।
नमस्कार की भेंट करूं जोडूं मैं दोनों हाथ।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

भजन एवं मन्त्र

ॐ नमः शिवाय ।

शिवाय नमः ॐ शिवाय नमः । शिवाय नमः ॐ नमः शिवाय ॥
ॐ नमः शिवाय ॐ नमः शिवाय । शिवाय नमः ॐ शिवाय नमः ॥

ॐ भगवान, ॐ भगवान । ॐ भगवान मुक्तानन्द भगवान ॥

ॐ नमो भगवते मुक्तानन्दाय ।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

श्रीराम जय राम जय जय राम ।

श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे । हे नाथ नारायण वासुदेव ॥
हे नाथ नारायण वासुदेव । हे नाथ नारायण वासुदेव ॥

मेरे मुक्तानन्द आधार । बार बार नमस्कार ।
बार बार नमस्कार । सर्वाधार नमस्कार ॥

विठ्ठले विठ्ठले विठ्ठले विठ्ठले । जय जय विठ्ठले, जय जय विठ्ठले ॥
रामकृष्ण हरी, मुकुंद मुरारी । पांडुरंग पांडुरंग, पांडुरंग हरी ॥

जय जय विठ्ठला, पांडुरंग विठ्ठला । पुंडलिक वरदा पांडुरंग विठ्ठला ॥

गोविन्द जय जय, गोपाल जय जय ।
राधारमण हरि, गोविन्द जय जय ॥

तू गोविन्द गोपाल गा, ओ बावरे ।
तू जीवन सफल बना, ओ बावरे ।
भजो राधे गोविन्द, भजो राधे गोविंद ॥

राजाराम कृष्ण हरि, जय जय रामकृष्ण हरि ।

श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु मुक्तानन्द ।
हरे कृष्ण हरे राम राधे गोविन्द ॥

हरि हरि बोल, हरि हरि बोल ।
मुकुंद माधव केशव बोल ॥

मुकुंद माधव केशव बोल ।
नरहरि विठ्ठल नारायण बोल ॥

मुक्तानन्द ब्रह्मानन्द परमानन्द बोल ।
ॐ गुरु जय गुरु जय जय गुरु बोल ॥

पांडुरंग श्रीरंग आत्मारंग बोल ।
नीलकण्ठ मेघश्याम हरि हरि बोल ॥

एकनाथ नामदेव तुकाराम बोल ।
झिप्रुअण्णा साईनाथ नित्यानंद बोल ॥

कान्होपात्रा मुक्ताबाई जनाबाई बोल ।
मीराबाई जगदम्बे सखुबाई बोल ॥

मीनाक्षी अन्नपूर्णा कामाक्षी बोल ।
चामुण्डी महादेवी कुण्डलिनी बोल ॥

विठ्ठल विठ्ठले पांडुरंग विठ्ठले ।
पांडुरंग विठ्ठले पंढरीनाथ विठ्ठले ॥

सांब सदाशिव, सांब सदाशिव, सांब सदाशिव हर शंभो ॥
हे गिरिजावर, हे गिरिजावर, हे गिरिजावर हर शंभो ॥
हे मृत्युंजय सच्चितसुखमय, हे करुणामय हर शंभो ॥

गोपाला, गोपाला, देवकीनंदन गोपाला ।
देवकीनंदन गोपाला, देवकीनंदन गोपाला ॥

हे भगवान, हे भगवान,
जयगुरु मुक्तानन्द तुम हो महान,
शरण आये हम तुम्हारे रक्षा करो भगवान ॥

नमः शिवाय ॐ नमः शिवाय, पार्वतिवल्लभ नमः शिवाय ।
पार्वतिवल्लभ नमः शिवाय, पार्वतिवल्लभ नमः शिवाय ॥

ॐ गुरु ॐ गुरु ॐ गुरुदेव
जय गुरु जय गुरु जय गुरुदेव
कृष्ण गोविंद गोविंद गोपाला
कृष्ण मुरली मनोहर नन्दलाला
जय जय विठ्ठल, जय हरि विठ्ठल ।

शिव आरती

ॐ जय गंगाधर हर। शिव जय गिरजाधीश, शिव जय गौरीनाथ।
त्वं मां पालय नित्यं, त्वं मां पालय शंभो, कृपया जगदीश।
ॐ हर हर हर महादेव॥

. १ .

कैलासे गिरिशखरे कल्पद्रुमविपिने, शिव कल्पद्रुमविपिने, गुंजति मधुकर पुंजे (२) कुञ्जवने गहने। कोकील कूजति खेलति हंसावलिललिता, शिव हंसा....। रचयति कलाकलापं (२) नृत्यति मुदसहिता, ॐ हर....।

. २ .

तस्मिंल्ललितसुदेशे शालामणिरचिता, शिव शाला....। तन्मध्ये हरनिकटे (२) गौरी मुदसहिता। क्रीडां रचयति भूषां रंजितनिजमीशं, शिव रंजित....। इन्द्रादिक सुरसेवित, ब्रह्मादिक सुरसेवित (२) प्रणमति ते शीर्षम् ॐ हर....।

. ३ .

विबुधवधूर्बह नृत्यति हृदये मुदसहिता, शिवहृदये....। किन्नरगानं कुरुते (२) सप्तस्वर सहिता। धिनकत थै थै धिनकत मृदंग वादयते, शिव मृदंग....। क्वण, क्वण ललिता वेणु (२) मधुरं नादयते, शिवतालं ....।

. ४ .

रुणु रुणु चरणे रचयति नूपुरमुज्वलितं, शिवनुपूर....। चक्रावर्ते भ्रमयति (२) कुरुते तां धिक् ताम्। तां तां लुपचुप तालं नादयते, शिव तालं....। अंगुष्ठांगुहिनादं (२) हास्येकतां कुरुते, ॐ हर....।

. ५ .

कर्पुरधुतिगौरं पंचाननसहितं, शिव पंचानन....त्रिनयनशशिधरमौहिः विषधरंकण्ठयुतम्। सुन्दरनयकलापं पावकयुतमाहंशिवपावक....। डमरुत्रिशूलपिनाकं (२) करधृतनृकपालं, ॐ हर...।

. ६ .

शंखनिनादं कृत्वा झल्लरि नादयते, शिवझल्लरि....। नीराजयते ब्रह्मा, नीराजयते विष्णुर्वेदऋचां पठते। इति मृदुचरणसरोजं हृत्कमहे धृत्वाशीव हृत्कमके....। अवलोकयाति महेशं, शिवलोकयाति सुरेशं, ईशम् अभिनत्वा। ॐ हर....।

. ७ .

रुण्डैः रचयति मालां पन्नगमुपवीतं, शिव पन्नग....वामविभागे गिरीजा, वामविभागे गौरी रुपमतिललितम्। सुन्दरसकलशरीरे कृतमस्माभरणं, शिवकृत....। इति वृषभध्वजरुपं, हरशिवशंकररुपं, तापत्रयहरणं। ॐ हर....।

ध्यानं आरति समये हृदये इति कृत्वा, शिव हृदये.... । रामं त्रिजटानाथं (२) ईशम अभिनत्वा । संगीतमेवं प्रतिदिनपठनं यः कुरुते, शिव पठनं.... । शिवसायुज्यं गच्छति (२) भक्ता यः श्रृणुते । ॐ हर.... ॐ जय गंगाधर हर। शिव जय गिरिजाधीश, शिव जय गौरीनाथ त्वं मां पालय नित्यं, त्वं मां पालय शम्भो, कृपया जगदीश । ॐ हर हर हर महादेव ॥

आरती लीजो

आरती लीजो, अज अविनाशी, पूरण नित्यानन्द प्रकाशी,
पूरण मुक्तानन्द प्रकाशी ॥

नभ और धरणी आरती थाला, चंद्र सूरज दोऊ दीप उजाला,
अगर चंदन सब धूप बिराजे, झूला मेरन चँवर तरन राशी ॥ १ ॥

फूल बनस्पती हैं ये सारी, सातों सागर जल की झारी
गगन अनाहत बाजें बाजे, गाजे राग डरे यम पाशी ॥ २ ॥

चार प्रकार के अन्न गोपाला, सोई तेरो भोग रसाला,
लोक चतुर्दिश मंदिर तेरो, घट-घट आसन स्वयंविकाशी ॥ ३ ॥

महावाक्य वेदन के जो हैं, सो तेरो चरणामृत सो हैं,
सदगुरु पुजारी देवचरणामृत, पिये नारी नर बंध विनाशी ॥ ४ ॥

द्वितीय खंड

॥ श्रीगुरु ॥

हे पार्वती के पति, त्रिविध तापों को हरनेवाले महादेव, आपको नमस्कार है।

हज़ार मूर्ति वाले, हज़ार पैर वाले, हज़ार नेत्र वाले, हज़ार मुख वाले, हज़ार जंघा वाले, हज़ार हाथ वाले, हज़ार नाम वाले, हज़ार युगपर्यन्त काल को धारण करने वाले, अविनाशी, अनन्त पुरुष को नमस्कार हो, नमस्कार हो।

जिनका स्वरूप सत्-चित् और आनन्दमय है, जो संसार के प्रपंचों से रहित हैं, शान्त-स्वरूप हैं, जिनका अन्य कोई आलम्बन नहीं है, जो तेजोमूर्ति हैं, ऐसे शिवस्वरूप श्रीगुरुदेव को नमस्कार है।

शिष्यों के संसार-प्रपंच का हरण करने वाले, केवल भक्तों के कारण ही सगुण देहधारी, चित्स्वरूप, सत्स्वरूप और नित्य-आनन्दस्वरूप गुरुदेव नित्यानंद को नमस्कार है।

परमात्मा हमारी एक साथ रक्षा करें। हम साथ ही भोजन करें। हम साथ–साथ पराक्रम करें। हमारा ज्ञान तेजयुक्त हो। हम कभी द्वेष न करें।

॥ शान्ति हो, शान्ति हो, शान्ति हो ॥

श्रीगुरुपादुकापंचकम्

सर्व गुरुओं को नमस्कार है। गुरुपादुकाओं को नमस्कार है। श्रीगुरुदेव के गुरुओं अथवा परगुरुओं को और उनकी पादुकाओं को नमस्कार है। आचार्यों और सिद्धविद्याओं के स्वामी सिद्धेश्वरों की पादुकाओं को नमस्कार है। बार-बार श्रीगुरुपादुकाओं को नमस्कार है॥ १ ॥

जो वाग्बीज ऐंकार और मायाबीज ह्रींकार के रहस्य से युक्त षोडशी बीज श्रींकार के गूढ़ अर्थ के महान ऐश्वर्य से ॐकार के मर्मस्थान को प्रकट करने वाली हैं, ऐसी उन गुरुपादुकाओं को नमस्कार है, नमस्कार है ॥ २ ॥

होत्र और हौत्र इन दोनों प्रकार की अग्नियों में हवन सामग्री, होम करने वाले होता और होम आदि इन सब में भासने वाले एक ही परब्रह्म तत्त्व को साक्षात् अनुभव करा देने वाली गुरुदेव की पादुकाओं को नमस्कार है, नमस्कार है ॥ ३ ॥

जो अन्तःकरण के काम-क्रोधादि महासर्पों के विष के उतारने वाली विषवैद्य हैं, विवेक अर्थात् अन्तर-ज्ञान और वैराग्य के खज़ाने को देने वाली हैं, जो प्रत्यक्ष बोध-प्रदायिनी और शीघ्र मोक्ष देने वाली हैं, श्रीगुरुदेव की ऐसी पादुकाओं को नमस्कार है, नमस्कार है ॥ ४ ॥

अन्तहीन संसाररूपी सागर को पार करने के लिये जो नौकारूप हैं; अविचल भक्ति को देने वाली हैं; प्रमाद, आलस्य, अज्ञानरूपी जड़ता के समुद्र को सुखाने के लिये जो वडवाग्नि (समुद्र में रहने वाली आग) के समान हैं; श्रीगुरुदेव की उन पादुकाओं को नमस्कार है, नमस्कार है ॥ ५ ॥

॥ शान्ति हो, शान्ति हो, शान्ति हो ॥

श्रीगुरुगीता

श्रीगुरुगीता प्रारम्भ होती है। इस श्रीगुरुगीतास्तोत्र मंत्र के ऋषि भगवान सदाशिव हैं। इसमें अनेक प्रकार के छंद हैं। इस गुरुगीता-स्तोत्र के देवता श्रीगुरु परमात्मा हैं। 'हं' बीज है। 'सः' शक्ति है। 'क्रों' कीलक है। श्रीगुरु की प्रसन्नता अथवा कृपा की सिद्धि के लिए जप में इसका अनुष्ठान है।

यह ध्यान है : दृश्यमान सचराचर जगत के कारणस्वरूप 'अहं' और 'सः' इन दो व्यापक दिव्य कमल के दो पत्रों से विश्व की रचना के लिये अनेक शरीरों में अपनी ही स्वेच्छा से स्वच्छन्दरूप से सतत निवास करने वाले, परमशिव पद से स्वयं प्रकाशित चरणकमलाकार, दीपज्योति की अंगुष्ठप्रमाण शिखासदृश, निरंजन, साक्षात् अक्षरशरीर, शब्दातीत होते हुए भी 'अ' से 'क्ष' तक समस्त वर्णमूर्ति, नामरहित भी सर्व नाम वाले, व्यापक, विभु, नित्य आनन्दस्वरूप, स्वयं सर्वथा मुक्त आनन्दैकरस गुरुदेव का ध्यान करना चाहिये॥ धर्म-अर्थ-काम-मोक्षरूपी अपने चार पुरुषार्थों की सिद्धि के हेतु जप करता हूँ :

सूत बोले

एक बार रमणीय कैलास शिखर पर पार्वती ने भक्ति का संधान करने में कुशल भगवान शिव से भक्तिपूर्वक प्रणाम करके प्रश्न किया॥ १॥

श्री देवी बोलीं

हे देवों के देव! हे परात्पर जगद्गुरु! आपको नमस्कार हो। हे सदा कल्याणस्वरूप महादेव, मुझे गुरु-दीक्षा दीजिये॥ २॥

हे स्वामी, देहधारी जीव किस स[redacted]ना-मार्ग का अवलम्ब करके ब्रह्ममय हो सकता है? मुझ पर आप कृपा कीजिये; मैं आपके चरणों में प्रणाम करती हूँ॥ ३॥

ईश्वर बोले

हे देवी, तुम मेरा ही स्वरूप हो। मैं तुम्हारी प्रसन्नता के लिए बताता हूँ। यह लोगों का कल्याण करनेवाला प्रश्न है जो पहले कभी किसी ने नहीं पूछा ॥ ४ ॥

तीनों लोकों में दुर्लभ इस तत्त्व को मैं कहता हूँ, तुम सुनो। गुरु से भिन्न ब्रह्म नहीं है; हे सुंदरी, यह सत्य है, यह सत्य है ॥ ५ ॥

वेद, शास्त्र, पुराण और इतिहास आदि, मंत्र-तंत्र आदि विद्याएँ और स्मृति, उच्चाटन आदि विधियाँ, शैव-शाक्त आगम और अन्य विविध प्रकार के मत-मतान्तर वाले ग्रन्थ, भ्रमित चित्तवाले जीवों को भ्रष्ट करने वाले हैं ॥ ६, ७ ॥

गुरु-तत्त्व को न जानने वाले मूढ़लोग यज्ञ, व्रत, तप, दान, जप, तीर्थ तथा ऐसे ही अनेक कार्यों का आचरण करते हैं ॥ ८ ॥

ज्ञानस्वरूप आत्मा से श्रीगुरु भिन्न नहीं हैं। यह सत्य है, इसमें संशय नहीं। इसलिए बुद्धिमान मनुष्यों को गुरु की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करना चाहिए ॥ ९ ॥

यह गूढविद्या जगत में मायारूप में तथा शरीर में अज्ञानरूप में रहती है। जिसके जागरण से सत्यज्ञान का उदय होता है, उस तत्त्व को 'गुरु' संज्ञा से जाना जाता है ॥ १० ॥

श्रीगुरु के चरणों की सेवा से मनुष्य सब पापों से मुक्त होकर शुद्ध हो जाता है। देहधारी जीव जिससे ब्रह्मरूप बनता है उस तत्त्व को मैं तुम्हें कृपापूर्वक कहता हूँ ॥ ११ ॥

श्रीगुरु के चरण-कमलों का स्मरण करके सिर पर जल धारण करने से मनुष्य को सर्व तीर्थों में स्नान करने का फल प्राप्त होता है ॥ १२ ॥

श्रीगुरु का चरणजल पापरूपी कीचड़ को सुखानेवाला, ज्ञानरूपी तेज को उज्ज्वल करनेवाला और संसार-सागर से तारनेवाला है ॥ १३ ॥

अज्ञान की जड़ को उखाड़नेवाला, जन्म और कर्म का निवारण करनेवाला श्रीगुरु-पादोदक, ज्ञान और वैराग्य की सिद्धि के लिये पीना चाहिए ॥ १४ ॥

श्रीगुरु के पादोदक का पान करके गुरु के उच्छिष्ट का (गुरु को समर्पित करके बचा हुआ) भोजन करना चाहिये तथा श्रीगुरुमूर्ति का निरन्तर ध्यान और गुरु द्वारा दिये गये मंत्र का सदा जप करना चाहिये ॥ १५ ॥

श्रीगुरु का निवास-स्थान ही काशी है, उनका चरणोदक गंगा है, श्रीगुरु साक्षात् विश्वेश्वर हैं, वे निश्चय ही साक्षात् तारक ब्रह्म हैं ॥ १६ ॥

श्रीगुरु का पादोदक ही गया तीर्थ है, वे ही अक्षयवट हैं, वे ही तीर्थराज प्रयाग हैं, ऐसी श्रीगुरुमूर्ति को बारम्बार नमस्कार ॥ १७ ॥

श्रीगुरुमूर्ति का नित्य स्मरण करें, गुरुनाम (गुरु के दिये हुए मंत्र) का सदा जप करें। गुरुदेव की आज्ञा का पालन करें। गुरुदेव से भिन्न किसी भी वस्तु की भावना न करें ॥ १८ ॥

श्रीगुरु के मुखारविन्द में स्थित ब्रह्म उनकी कृपा से ही प्राप्त किया जा सकता है। श्रीगुरुदेव का इस प्रकार ध्यान करना चाहिये, जैसे कुलीन स्त्री सतत अपने पति का ध्यान करती है ॥ १९ ॥

आपने आश्रम, अपनी जाति, अपनी कीर्ति और उन्नति के साधन, इन सब का परित्याग करके श्रीगुरु के सिवा अन्य किसी की भावना नहीं करनी चाहिये ॥ २० ॥

जो अनन्यभाव से मेरा (शिवरूप गुरु का) प्रयत्नपूर्वक चिन्तन करता है, उसके लिये परमपद सुलभ है। इसलिये गुरु की आराधना करो ॥२१॥

त्रिलोक में देव-असुर-नाग आदि स्पष्ट वर्णन करते हैं कि गुरुदेव के मुखारविन्द में रहने वाली विद्या (सत्यज्ञान) गुरुभक्ति से ही प्राप्त होती है ॥ २२ ॥

'गु' शब्द का अर्थ है अन्धकार और 'रु' शब्द का अर्थ है तेज–प्रकाश। गुरु ही अज्ञान का नाश करने वाला ब्रह्म है, इसमें सन्देह नहीं है ॥ २३ ॥

'गुरु' शब्द का प्रथम वर्ण 'गु' माया आदि गुणों को प्रकट करने वाला है और दूसरा वर्ण 'रु' ब्रह्म का द्योतक है जो माया की भ्रान्ति का विनाश करने वाला है ॥ २४ ॥

इस प्रकार गुरुपद सबसे श्रेष्ठ है, देवों को भी दुर्लभ है और हाहा हूहू नामक गणों द्वारा तथा गन्धर्वों द्वारा प्रपूजित हैं ॥ २५ ॥

उन सभी की यह दृढ़ मान्यता है कि गुरु से परे कोई दूसरा तत्त्व नहीं है। साधक को श्रीगुरु जिससे भी सन्तुष्ट हों, ऐसे आसन, शयन, वस्त्र, भूषण, वाहन आदि गुरु-अर्पण करने चाहिये। श्रीगुरु की आराधना करनी चाहिये और अपने जीवन को अर्पण कर देना चाहिये ॥ २६, २७ ॥

कर्म, मन और वाणी से सदा गुरु की आराधना करें और श्रीगुरु के सम्मुख लज्जा त्याग कर दीर्घ साष्टांग दण्डवत प्रणाम करना चाहिये ॥ २८ ॥

शरीर, इन्द्रिय, प्राण सद्गुरु को निवेदन करना चाहिये। स्वयं तथा पत्नी आदि सबको—सर्व प्रिय सम्बन्धों को—सद्गुरु को अर्पण करना चाहिये; अर्थात् ममत्व भाव का सम्पूर्ण त्याग करते हुए सद्गुरु की शरण में जाना चाहिये ॥ २९ ॥

हे सुन्दरी! अपने शरीर के कृमि, कीट, भस्म, विष्ठा, दुर्गंध, मलमूत्र, श्लेष्म, रक्त, त्वचा, मांस आदि का भी श्रीगुरु से अपहार नहीं करना चाहिये, अर्थात् अपने को पूर्णतया सद्गुरु को अर्पण करने में वंचना नहीं करनी चाहिये ॥ ३० ॥

संसाररूपी वृक्ष पर आरूढ होकर नरकरूपी समुद्र में गिरते हुए सब जीवों का जिन्होंने उद्धार किया है उन श्रीगुरु को नमस्कार है ॥ ३१ ॥

गुरु ही ब्रह्मा हैं, गुरु ही विष्णु हैं, गुरु ही शिव हैं, गुरु ही परब्रह्म हैं, ऐसे श्रीगुरु को नमस्कार है ॥ ३२ ॥

जो जगत की उत्पत्ति के कारणरूप हैं, संसार-सागर को पार करने के लिये सेतुरूप हैं, तथा जो सब विद्याओं के उदय-स्थान हैं, ऐसे शिवस्वरूप कल्याणकारी श्रीगुरु को नमस्कार है ॥ ३३ ॥

अज्ञानरूप अन्धकार से अंधे बने हुए जीव के नेत्रों को जिन्होंने ज्ञानरूपी अंजन शलाका से खोल दिया है, ऐसे श्रीगुरु को नमस्कार है ॥ ३४ ॥

संसार के सत्य ज्ञान का बोध कराने वाले तुम ही मेरे पिता हो और तुम ही मेरी माता हो, तुम ही बन्धु हो और तुम ही इष्ट देवता हो; ऐसे उन श्रीगुरु को नमस्कार है ॥ ३५ ॥

जिनके अस्तित्व से जगत का अस्तित्व है, जिनके प्रकाश से वह प्रकाशित होता है, जिनके आनन्द से सब आनन्दित होते हैं, उन (सच्चिदानन्दरूप) श्रीगुरु को नमस्कार है ॥ ३६ ॥

जिनकी स्थिति से यह जगत है, जिनके सूर्यरूप होने से यह सब प्रकाशित होता है, जिनकी प्रीति के कारण पुत्रादि सब सम्बन्धी प्रिय लगते हैं, उन श्रीगुरु को नमस्कार है ॥ ३७ ॥

जिनसे यह जगत चेतनस्वरूप लगता है, किन्तु चित्त जिसको प्रकाशित नहीं कर सकता; जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति आदि अवस्थाएँ जिनके द्वारा प्रकाशित होती हैं, उन चित्स्वरूप श्रीगुरु को नमस्कार है ॥ ३८ ॥

जिनके ज्ञान से यह विश्व (शिव से) भिन्न अथवा भेदरूप दिखाई नहीं देता, एकमात्र सद्‌रूप ही जिनका रूप है, उन श्रीगुरु को नमस्कार है ॥ ३९ ॥

'जो कहते हैं कि उन्होंने (ब्रह्म को) नहीं जाना है, वे ज्ञानी हैं और जो कहते हैं कि जान लिया; वे नहीं जानते हैं'—जो ब्रह्म से अभेदभावपूर्ण हैं, ऐसे श्रीगुरुको नमस्कार है ॥ ४० ॥

कारणरूप जिन गुरुदेव से कार्यरूप जगत प्रकाशित होता है, उन कार्य-कारणरूप श्रीगुरु को नमस्कार है ॥ ४१ ॥

नाना रूप वाले इस विश्व में कहीं भी कोई भिन्नता नहीं है, केवल कार्य-कारणभाव ही है, ऐसे श्रीगुरु को नमस्कार है ॥ ४२ ॥

जिनके चरण-कमल-युगल सुख-दुःख शीतोष्णादि द्वन्द्व तापों का निवारण करते हैं और सदा आपत्तियों से उद्धार करते हैं, ऐसे श्रीगुरु को मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ४३ ॥

शिव के रुष्ट होने पर गुरु रक्षण करनेवाले हैं, किन्तु गुरु के रुष्ट होने पर शिव भी रक्षण नहीं कर सकता; इसलिये पूर्ण प्रयत्न द्वारा श्रीगुरु की शरण जाना चाहिये ॥ ४४ ॥

परशिव और पराशक्तिस्वरूप, श्वेत-अरुण प्रभा से युक्त, मन-वाणी और चित्त से गोचर श्रीगुरु के चरण-युगल की मैं वन्दना करता हूँ ॥ ४५ ॥

'गु' शब्द गुणातीत और 'रु' शब्द रूपातीत को प्रकट करता है। जो गुणरूप से अतीत (निर्गुण-निराकार) आत्मस्वरूप के प्रदाता हैं, उन्हें गुरु कहा गया है ॥ ४६ ॥

हे प्रिये, तीन नेत्रों के न होने पर भी जो सर्वसाक्षी शिवस्वरूप हैं, चार भुजाओं के न होने पर भी अच्युत विष्णु हैं, चार मुखों के न होने पर भी ब्रह्मा हैं, उन्हें श्रीगुरु कहा गया है ॥ ४७ ॥

दया के उमड़ते हुए समुद्र उन श्रीगुरुदेव को मैं हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूँ, जिनकी कृपा से जीव इस भेदात्मक संसार से मुक्ति पा लेता है ॥ ४८ ॥

श्रीगुरु का परमरूप विवेकरूपी चक्षुओं के लिये अमृत-सदृश्य है। मन्दभाग्य लोग उस रूप को नहीं देखते, जैसे अन्धे सूर्योदय को नहीं देख पाते ॥ ४९ ॥

हे प्रिये, जिस दिशा में श्रीगुरुनाथ के चरण-युगल विराजते हैं, उस दिशा को प्रतिदिन भक्तिपूर्वक नमस्कार करना चाहिये ॥ ५० ॥

हे आर्ये, जिस दिशा में विश्व की उत्पत्ति और प्रलयरूप नाटक के नित्य साक्षी भगवान चक्रवर्ती गुरुदेव जाग्रत हैं उस दिशा में विद्वज्जन मंत्रोच्चार करते हुए गुंजारव करनेवाले भ्रमर जिनपर मँड़राते हैं ऐसे सुगंधित पुष्पों की पुष्पाञ्जलि अर्पित करते हैं ॥ ५१ ॥

श्रीगुरुदेव, परम गुरुदेव और परात्पर गुरुदेवस्वरूप श्रीनाथादि तीन गुरुदेव; गणपती, कामरूप, पूर्णगिरि जालंधर तीन पीठ; मन्थान आदि आठ भैरव, सिद्धों का समुदाय, विरञ्चि, चक्र, स्कन्द आदि तीन बटुक; प्रकाश और विमर्श (शिव और शक्ति) दो चरण, योन्यम्बादि दूती, अग्निमंडल, सूर्यमण्डल, सोममण्डल आदि मण्डल; दस वीर (भैरव), चौंसठ योगिनी, सर्वसंशोधिनी आदि नौ मुद्रा; ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर और सदाशिव पांच वीर; 'अ' से 'क्ष' पर्यन्त इक्यावन मात्राओं से युक्त मालिनी मन्त्र—इन सब तत्त्वों से युक्त जो गुरु का मण्डल है, अर्थात् गुरु का दरबार है, उसे मैं नमन करता हूँ ॥ ५२ ॥

दुष्कर व्याधि देने वाले, इन्द्रियों को दुःख देने वाले, दुर्जय, दीर्घश्वास क्रियारूप सैंकड़ों संख्या में किए हुए प्राणायामों के अभ्यास से क्या लाभ? जिसके उदय होते ही बलवान वायु तत्क्षण शान्त होता है, उस सहज आत्मभाव को प्राप्त करने के लिये निरन्तर गुरुसेवा करो ॥ ५३ ॥

अपने गुरुदेव के शरीर का (स्वरूप का) चिन्तन अनंत शिव के स्वरूप के चिन्तन के बराबर है। अपने गुरुदेव के नाम का (गुरुमंत्र का) कीर्तन अनन्त शिव कीर्तन के बराबर है ॥ ५४ ॥

जिनके चरणरज की एक छोटी-सी कनी संसार-सागर के पार जाने के लिए सेतु बन जाती है, ऐसे गुरुनाथ की मैं उपासना करता हूँ ॥ ५५ ॥

जिनके अनुग्रह को प्राप्त कर महान अज्ञान का नाश होता है, ऐसे गुरुदेव को अपने इष्ट विषय की सिद्धि के लिये नमस्कार है ॥ ५६ ॥

जिनका चरणकमल संसार के सब दावानलों का विनाशक है उन श्रीगुरुदेव का, ब्रह्मरन्ध्र में चन्द्रमण्डल के अन्दर श्वेतकमल के बीच तथा सहस्रदलमण्डलरूपी कमल में अकथादि तीन रेखाओं से निर्मित और 'हं' 'सः' वर्णों से युक्त त्रिकोण में ध्यान करें ॥ ५७, ५८ ॥

संपूर्ण लोकों का सृजन करने वाली, समस्त पदार्थों की पुष्टि करने वाली, सकल शास्त्रों में पकड़ रखने वाली, सम्पदाओं को व्यर्थ मानने वाली, अवगुणों का परिमार्जन करने वाली, 'तत्' सत्ता में ही एकदृष्टि रखने वाली, संसार के गुणों की विधायिका, मोक्ष मार्ग पर ही जिसकी दृष्टि टिकी हुई है, समस्त लोकों के रंगमंच की स्थापना के लिए जो आधारभूत स्तंभ के समान है, करुणा रस के लिए वर्षा की भाँति है, जो छत्तीस तत्त्वों की समष्टिरूप माला के समान है, जिससे समस्त नीति-नियमों अथवा काल की रचना होती है, जो सच्चिदानन्द स्वरूप है, ऐसी श्रीगुरुदेव की दिव्य दृष्टि हमेशा मेरे ऊपर रहे ॥ ५९, ६० ॥

हे देवि ! अग्नि से शुद्ध सुवर्ण के समान चारों ओर से बुद्धिरूपी ज्वाला से शुद्ध किया हुआ यह मंत्रराज निरन्तर मृत्यु से रक्षण करे, ऐसा मैं मानता हूँ ॥ ६१ ॥

वह तत्त्व (गुरु अथवा ब्रह्म) गतिशील है, अचल है, वह दूर है, वह समीप है। वह तत्त्व सबके (समग्र विश्व के) भीतर है, तथा वह सबके बाहर भी है ॥ ६२ ॥

'अहं' शब्द से वर्णित वह तत्त्व अज, अजर, अनादि और मृत्युरहित है। निर्विकार, चिदानन्दस्वरूप, अणु से सूक्ष्म और महत् से महान है ॥ ६३ ॥

वह तत्त्व अपूर्व याने जिससे पूर्व कुछ नहीं था उससे भी परे है, वह नित्य, स्वयंप्रकाशित, निरामय, मलरहित, परमाकाशस्वरूप, अविचल, आनन्दस्वरूप, क्षयरहित है ॥ ६४ ॥

जिन गुरुदेव का आत्मतपोबल वेद-शास्त्र, प्रत्यक्ष, इतिहास और अनुमान इन चार प्रमाणों से जाना जाता है, ऐसे गुरुनाथ का सदा स्मरण करें। हे देवि, तुममें साधुता को देखकर अब उस तत्त्व का मनन कैसे करना चाहिये यह मैं तुम्हें कहता हूँ॥ ६५, ६६॥

जिसके द्वारा यह सम्पूर्ण वलयाकार चर और अचर जगत व्याप्त है, उस पद को (ब्रह्म या आत्मतत्त्व को) जिन्होंने दिखाया, उन श्रीगुरुदेव को नमस्कार है॥ ६७॥

जिनके चरण-कमल सब वेदों के मुकुटमणिरूप महावाक्यों से सुशोभित होते हैं, और जो वेदान्तरूप कमल को विकसित करने के लिये सूर्य के समान हैं, उन श्रीगुरुदेव को नमस्कार है॥ ६८॥

जिनके स्मरणमात्र से अपने आप ज्ञान उत्पन्न होता है, जो स्वयं सर्व प्राप्तिरूप हैं, उन श्रीगुरुदेव को नमस्कार है॥ ६९॥

जो चैतन्यस्वरूप, शाश्वत, शान्त, आकाश से परे, निरंजन, नादातीत, बिन्द्वातीत, कलातीत हैं, उन श्रीगुरुदेव को नमस्कार है॥ ७०॥

स्थावर-जंगम, चराचर समस्त जगत जिनसे व्याप्त है, उन श्रीगुरुदेव को नमस्कार है॥ ७१॥

ज्ञानशक्ति पर आरूढ़ छत्तीस तत्त्वों की माला से अलंकृत, भुक्ति और मुक्ति देनेवाले श्रीगुरुदेव को नमस्कार है॥ ७२॥

अपने आत्मज्ञान के प्रभाव से अनेक जन्मों के संचित सब कर्मों को भस्म करने वाले श्रीगुरुदेव को नमस्कार है॥ ७३॥

श्रीगुरु से बढ़कर कोई तत्त्व नहीं है, श्रीगुरु की सेवा से बढ़कर कोई तप नहीं है, ज्ञान से बढ़कर दूसरा कोई तत्त्व नहीं है, ऐसे श्रीगुरुदेव को नमस्कार है॥ ७४॥

मेरे नाथ सारे जगत के नाथ हैं। मेरे गुरु तीनों जगत के गुरु हैं। मेरा आत्मा सर्वव्यापी सबमें रहनेवाला आत्मा है। यह अनुभव कराने वाले श्रीगुरु को नमस्कार है॥ ७५॥

ध्यान का मूल आधार है श्रीगुरु की मूर्ति, पूजा का मूल है श्रीगुरु के चरण, मंत्र का मूल है गुरु-वाक्य, मोक्ष का मूल है श्रीगुरु की कृपा ॥ ७६ ॥

गुरु आदि हैं, अनादि हैं, गुरु परम देवता हैं। गुरुदेव से परे कुछ भी नहीं। ऐसे श्रीगुरुदेव को नमस्कार है ॥ ७७ ॥

सातों सागर तक के तीर्थों में स्नान करने से जो फल मिलता है, वह फल श्रीगुरुदेव के चरणोदक के एक बिन्दु के हज़ारवें भाग में ही सुलभ है ॥ ७८ ॥

हरि के रुष्ट होने पर गुरु बचाते हैं, गुरु के रुष्ट होने पर कोई नहीं बचा सकता, इसलिये समस्त प्रयत्नों द्वारा श्रीगुरु की शरण में जाना चाहिये ॥ ७९ ॥

ब्रह्मा, विष्णु और शिवस्वरूप श्रीगुरु ही समग्र जगत हैं। गुरु से परे कुछ नहीं है, इसलिये श्रीगुरु का पूजन करना चाहिये ॥ ८० ॥

श्रीगुरु की भक्ति से ज्ञान और विज्ञान (आत्मा का अपरोक्ष ज्ञान तथा जगत का परोक्ष ज्ञान) प्राप्त होता है। गुरुदेव से श्रेष्ठ कुछ नहीं है, इसलिये सिद्धमार्गियों को उनका ध्यान करना चाहिये ॥ ८१ ॥

'नेति नेति' कह कर श्रुति ने बताया है कि गुरु से श्रेष्ठ कोई वस्तु नहीं है, इसलिये मन और वचन से हमेशा गुरुदेव की आराधना करनी चाहिये ॥ ८२ ॥

ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि भी गुरुकृपा के प्रसाद से केवल गुरुसेवा द्वारा विश्व की उत्पत्ति आदि में समर्थ हुए हैं ॥ ८३ ॥

देव, किन्नर, गन्धर्व, पितर, यक्ष-चारण और मुनिजन भी गुरुसेवा की विधि नहीं जानते ॥ ८४ ॥

तप, विद्या, बल से युक्त लोग अहंकार से भरे होने के कारण यहाँ संसार के भ्रम-चक्र में वैसे ही घूमते रहते हैं जैसे रहट के चक्के पर घड़ा घूमता है ॥ ८५ ॥

देव, गन्धर्व, किन्नर, पितर, यक्ष, ऋषि और सिद्ध भी यदि गुरु-सेवा से पराङमुख हों तो कभी मुक्त नहीं हो सकते ॥ ८६ ॥

हे महादेवी, सुनो। गुरुध्यान सर्व आनन्दप्रद, सर्व सुखप्रद, भोग और मोक्ष प्रदान करने वाला है ॥ ८७ ॥

श्रीमत् परब्रह्म गुरु का मैं स्मरण करता हूँ। श्रीमत् परब्रह्म गुरु का मैं स्तवन करता हूँ। श्रीमत् परब्रह्म गुरु को मैं नमन करता हूँ। श्रीमत् परब्रह्म गुरु की मैं काया, वाचा, मन एवं कर्म से सेवा-आराधना करता हूँ ॥ ८८ ॥

ब्रह्मानन्दरूप, परमसुखदाता, केवल ज्ञानस्वरूप, सुखदुःखादि द्वन्द्वरहित, आकाश के समान, तत्त्वमसि आदि वाक्यों के लक्ष्य, एक, नित्य, विमल, निश्चल, सर्व प्राणियों की बुद्धि के साक्षी, भावातीत, तीनों गुणों से रहित ऐसे सद्गुरु को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ८९ ॥

नित्य, शुद्ध, आभासरहित, निराकार, निरंजन, नित्यबोधस्वरूप, चिदानन्दस्वरूप, परब्रह्म गुरुदेव को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ९० ॥

हृदय-कमल में कर्णिका के बीच विद्यमान सिंहासन पर विराजमान दिव्यमूर्ति, चंद्रकला के समान प्रकाशरूप, एक हाथ में ज्ञानरूप पुस्तक और दूसरे हाथ में इष्ट वरदान देनेवाली वरमुद्रा धारण करने वाले श्रीगुरु का ध्यान करना चाहिये ॥ ९१ ॥

श्वेत वस्त्र, श्वेत विलेपन ओर श्वेत पुष्पों को धारण किये हुए, मोतियों से अलंकृत, आनन्दपूर्ण, दो नेत्र वाले, जिनकी वामांक पीठिका पर दिव्य शक्ति विराजमान है, मन्द मुस्कान युक्त, गाढ़ कृपा के आगार गुरुदेव का ध्यान करना चाहिये ॥ ९२ ॥

आनन्दस्वरूप, आनन्दप्रदाता, प्रसन्नमुख, ज्ञानस्वरूप, आत्मबोधयुक्त, योगीश्वर, स्तुति करने योग्य, संसाररूपी रोग के वैद्य श्रीगुरु को मैं नित्य नमस्कार करता हूँ ॥ ९३ ॥

जिनमें उत्पत्ति, स्थिति, लय, निग्रह और अनुग्रहरूप पंचकृत्य नित्य भासते हैं, उन गुरुदेव को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ९४ ॥

प्रातःकाल में, मस्तक के श्वेत-कमल में विराजित दो नेत्र और दो भुजावाले श्रेष्ठ, अभय मुद्रायुक्त, शान्त गुरुदेव का नामपूर्वक स्मरण करना चाहिये ॥ ९५ ॥

गुरु से अधिक कुछ नहीं है; गुरु से अधिक कुछ नहीं है; गुरु से अधिक कुछ नहीं है; गुरु से अधिक कुछ नहीं है; यह शिवशासन है, शिवशासन है, शिवशासन है ॥ ९६ ॥

यह गुरुतत्त्व ही कल्याणकारी है; यही कल्याणकारी है; यही कल्याणकारी है; यही कल्याणकारी है; यह मेरा शासन है, मेरा शासन है, मेरा शासन है, मेरा शासन है ॥ ९७ ॥

इस प्रकार (श्लोक ८८ से ९५ तक वर्णित) गुरुध्यान करने से ज्ञान आप ही आप उत्पन्न होता है। उन सद्गुरु के प्रसाद से "मैं मुक्त हूँ" ऐसी भावना करनी चाहिये ॥ ९८ ॥

गुरु के बताये हुए मार्ग से मन की शुद्धि करनी चाहिये। मन और इन्द्रियों द्वारा गोचर विषयरूप सभी अनित्य पदार्थों का त्याग करना चाहिये ॥ ९९ ॥

सर्व का स्वस्वरूप आत्मा ज्ञेय है, और ज्ञान को मन कहा गया है। (क्योंकि मन द्वारा ही 'ज्ञान' होता है) ज्ञान अर्थात् मन को ज्ञेयसम अर्थात् आत्मा के तुल्य करना चाहिये, मोक्षप्राप्ति के लिये दूसरा कोई मार्ग नहीं है ॥ १०० ॥

हे महादेवी, यह गुरुमहिमा सुनकर भी जो गुरु की निन्दा करता है वह जब तक चन्द्र और सूर्य हैं, तब तक घोर नरक में रहता हैं ॥१०१॥

हे देवी ! देह रहे तब तक, कल्प के अन्त तक भी गुरु-स्मरण करना चाहिये। शिष्य के स्वच्छन्द अथवा मुक्त होने पर भी उसे गुरु का लोप नहीं करना चाहिये, अर्थात् गुरु से पराङ्मुख नहीं होना चाहिए ॥१०२॥

विवेकी शिष्य कभी गुरु के सामने हुँकार करके न बोले; तथा उनके सन्मुख असत्य भाषण न करे ॥ १०३ ॥

गुरु के सामने जो शिष्य हुँकार-तुँकार करके बोलता है और गुरु को वादविवाद से जीतने का प्रयत्न करता है, वह निर्जल अरण्य में ब्रह्मराक्षस होता है ॥ १०४ ॥

हे पार्वती ! मुनियों, सर्पों अथवा देवताओं ने यदि शाप दिया हो तो उससे, और काल तथा मृत्यु के भय से भी गुरु रक्षण करता है ॥१०५॥

जिसको गुरु ने शाप दिया हो, उसका रक्षण करने के लिये देवता या मुनि भी समर्थ नहीं हैं। गुरु के शाप से वह जल्दी ही नष्ट होता है, इसमें संशय नहीं ॥ १०६ ॥

हे देवी, 'गुरु' यह दो अक्षरवाला शब्द महामंत्र है। श्रुति और स्मृति भी कहती हैं कि गुरु साक्षात् परम पद याने परब्रह्म है ॥१०७॥

श्रुति और स्मृति को न जानने पर भी केवल गुरु-सेवा करनेवाला ही संन्यासी है, दूसरे तो केवल वेशधारी संन्यासी हैं ॥ १०८ ॥

जिस प्रकार एक दीपक अन्य दीपक को प्रकाशित करता है, उसी प्रकार शिष्य को जो नित्य, निराकार, निर्गुण, निराभास परब्रह्म का बोध कराता है, वह गुरु है ॥ १०९ ॥

श्रीगुरुदेव का कृपा-प्रसाद प्राप्त करके शिष्य को आत्मा का ध्यान करना चाहिये। इस गुरुमार्ग से अपने स्वरूप का ज्ञान होता है ॥११०॥

ब्रह्म से लेकर स्तंब (तृण) पर्यन्त, स्थावर-जंगम परमात्मा का ही स्वरूप है, ऐसे जगन्मय श्रीगुरुदेव को मैं प्रणाम करता हूँ ॥ १११ ॥

सच्चिदानन्दस्वरूप, भेदरहित, नित्य, पूर्ण, निराकार, निर्गुण स्वात्मा में अवस्थित श्री गुरुदेव को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ११२ ॥

पर से भी परे, नित्य आनन्दकारक, शुद्धस्फटिक के समान निर्मल, हृदयाकाश के मध्यस्थित, गुरुदेव (परमात्मा) का ध्यान करना चाहिये। और जैसे दर्पण में शुद्ध स्फटिक की प्रतिमा दिखाई देती है, वैसे ही आत्मा में चिदाकार आनन्दरूप 'वही मैं हूँ' यह 'सोऽहं' भाव प्रकट होता है ॥ ११३, ११४ ॥

हृदय में अंगुष्ठ-प्रमाण चिन्मय आत्मा का ध्यान करते हुए जो भाव स्फुरित होता है, वह मैं तुम्हें कहता हूँ, सुनो ॥ ११५ ॥

हे पार्वती ! ब्रह्म का निज स्वरूप अगोचर, अगम्य, नाम-रूपरहित, निःशब्द (शब्दरहित) है, उसे जानना चाहिए ॥ ११६ ॥

जैसे कर्पूर और पुष्पादि में सुगन्ध स्वाभाविक है, जैसे सर्दी-गर्मी स्वाभाविक है, वैसे ही ब्रह्म भी शाश्वत है ॥ ११७ ॥

इस प्रकार ब्रह्मरूप होकर संसार में कहीं भी रहो। कीट जैसे भ्रमर के ध्यान से भ्रमर ही बन जाता है, वैसे ही ब्रह्म के ध्यान से जीवात्मा भी ब्रह्म ही बन जाता है ॥ ११८ ॥

अन्तःकरण में गुरु का वैसा ध्यान करते हुए शिष्य स्वयं ब्रह्ममय बन जाता है; पिंड में, पद में, रूप में वह मुक्त है इसमें संशय नहीं ॥ ११९ ॥

पार्वती बोलीं

हे महादेव, पिंड क्या है ? पद किसको कहते हैं ? हे शंकर, रूप एवं रूपातीत क्या है, यह विस्तार से कहिये ॥ १२० ॥

महादेव ने कहा

हे देवी ! कुंडलिनी शक्ति को पिंड कहते हैं, 'हंस' को पद कहते हैं, बिन्दु को रूप कहते हैं और निरंजन, निराकार को रूपातीत कहते हैं ॥ १२१ ॥

हे सुमुखि ! जिसकी कुंडलिनी शक्ति जागृत हुई है वह पिंड में मुक्त है, जिसका हंस पद में प्राण स्थिर हुआ है वह पद में मुक्त है, और जिसको आत्मज्योतिरूप नीलबिन्दु का दर्शन हुआ है वह रूप में मुक्त है। जो निरंजन, निराकार, निर्विकल्प स्थिति में है, वही यथार्थ में मुक्त है, इसमें संशय नहीं ॥ १२२ ॥

साधक को स्वयं सर्वमय बनकर उस परम तत्त्व को देखना चाहिये, उस परम तत्त्व से परे कुछ नहीं है, यह सब कुछ निराश्रय है ॥ १२३ ॥

उस परम तत्त्व का साक्षात्कार करने के अनन्तर साधक, श्रीगुरु की कृपा से सब आसक्तियों से रहित, अकेला, निःस्पृह, शांत होकर स्थिर हो जाता है ॥ १२४ ॥

इष्ट की प्राप्ति हो या न हो, थोड़ी हो या अधिक हो, तो भी कामनारहित होकर सदा सन्तुष्टचित्त से उसे भोगना चाहिये ॥ १२५ ॥

ज्ञानी लोग उस पद को सर्वज्ञपद कहते हैं, जिस पद को पाकर देही जीव सर्वात्मामय बन जाता है और सदा शान्त होकर, सदा आनन्द से, कहीं पर भी रहते हुए रमण करता है ॥ १२६ ॥

वह जहाँ निवास करता है, वह देश पुण्यभूमि है। हे देवी, मैंने तुम्हारे सामने मुक्त पुरुष के लक्षणों का वर्णन किया है ॥ १२७ ॥

हे देवी, गुरुमार्ग द्वारा मुक्ति देने वाला उपदेश, गुरुभक्ति तथा ध्यान यह सब मैंने तुझे बताया है ॥ १२८ ॥

हे महाबुद्धिशालिनी, इस (उपदेश, गुरुभक्ति तथा ध्यान) से जो कार्य सिद्ध होते हैं, वह कहता हूँ। इसका उपयोग लोक-कल्याण के लिये करना चाहिये, लौकिक कार्यों के लिये नहीं ॥ १२९ ॥

जो ज्ञानहीन लोग लौकिक कार्य के लिये इसका उपयोग करते हैं वे संसाररूपी समुद्र में भटकते रहते हैं, परंतु ज्ञानी के किये हुए सब कर्म निष्कर्म बन जाते हैं, (उसे कर्म का फल भोगना नहीं पड़ता) ॥ १३० ॥

यह गुरुगीता भक्तिभावपूर्वक पढ़ने से, सुनने से और लिखकर देने से सर्वफल की प्राप्ति होती है ॥ १३१ ॥

हे देवी, गुरुगीतारूपी शुद्ध तत्त्व मैंने तुमसे कहा। भवव्याधि का नाश करने के लिये सदा स्वयं उसका जप करना चाहिये ॥ १३२ ॥

इस गुरुगीता का एक एक अक्षर परम मंत्र है। अन्य अनेक मंत्र उसकी सोलहवीं कला के तुल्य भी नहीं हैं ॥ १३३ ॥

गुरुगीता का पाठ करने से अनन्त फल की प्राप्ति होती है, सर्व पाप नष्ट होते हैं और सर्व प्रकार की दरिद्रता का नाश होता है ॥ १३४ ॥

गुरुगीता का यह जप काल-मृत्यु के भय को दूर करने वाला, सर्व संकटों का नाश करनेवाला और यक्ष, राक्षस, भूत, चोर, व्याघ्रादि के भय को हरण करने वाला है ॥ १३५ ॥

इससे सर्व प्रकार की महाव्याधियाँ दूर होती हैं। सर्व सिद्धियाँ व अलौकिक शक्तियाँ प्राप्त होती हैं तथा सम्मोहन, वशीकरण आदि की प्राप्ति होती है। इसका स्वयं जप करना चाहिये ॥ १३६ ॥

वस्त्रासन पर बैठकर जप करने से दरिद्रता, पत्थर पर रोग की उत्पत्ति और पृथ्वी पर बैठकर जप करने से दुःखप्राप्ति होती है; काष्ठ पर बैठकर करने से जप निष्फल होता है ॥ १३७ ॥

कृष्ण मृगचर्म पर बैठकर जप करने से ज्ञान की प्राप्ति, व्याघ्रचर्म पर मोक्ष की प्राप्ति, दर्भासन पर ज्ञानसिद्धि और कम्बल पर सर्वसिद्धि होती है ॥ १३८ ॥

हे देवी ! इस गुरुगीता का स्वाध्याय, दर्भ या दूर्वा के आसन पर या सफेद कम्बल के आसन पर बैठकर एकाग्र मन से करना चाहिये ॥ १३९ ॥

शान्ति के लिये सफेद आसन, वशीकरण के लिये लाल आसन, सम्मोहन के लिये कृष्ण आसन और धनप्राप्ति के लिये पीला आसन उपयुक्त है ॥ १४० ॥

शान्ति की कामना वाला उत्तर दिशा की तरफ मुख करके जप करे, वशीकरण सिद्ध करने की इच्छा वाला पूर्व की तरफ और मारण की इच्छा वाला दक्षिण की तरफ और धनप्राप्ति की इच्छा रखने वाला पश्चिम की तरफ मुख करके जप करे ॥ १४१ ॥

इस गुरुगीता के पाठ से सर्व प्राणियों का सम्मोहन, सर्व बन्धनों से मुक्ति देव और राजा की प्रीति और सर्व लोगों का वशीकरण होता है ॥ १४२ ॥

इस गुरुगीता के पाठ से सब अनिष्टों का स्तम्भन, गुणों की वृद्धि, दुष्कर्म का नाश और सत्कर्म की सिद्धि होती है ॥ १४३ ॥

असिद्ध कार्य सिद्ध होता है, नवग्रहों की पीड़ा दूर होती है, दुःस्वप्न दूर होता है, सुस्वप्न का फल मिलता है ॥ १४४ ॥

इसके पाठ से सर्व प्रकार की शान्ति होती है, वन्ध्या स्त्री को पुत्रप्राप्ति होती है। अवैधव्य तथा सौभाग्य की वृद्धि होती है ॥ १४५ ॥

इसके पाठ से आयु, आरोग्य और ऐश्वर्य, पुत्र-पौत्र की वृद्धि होती है। विधवा स्त्री यदि निष्काम भाव से इसका पाठ करे तो उसे मोक्ष की प्राप्ति होती है ॥ १४६ ॥

सकाम भाव से इसका पाठ करने से दूसरे जन्म में वह अवैधव्य को प्राप्त करती है। गुरुगीता का पाठ सर्व दुःख, भय, विघ्न तथा शाप को नष्ट करता है ॥ १४७ ॥

इसके पाठ से सभी विघ्न शान्त होते हैं; धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति होती है। साधक जिन जिन विषयों का चिन्तन करता है, वे सब उसे निश्चित प्राप्त होते हैं ॥ १४८ ॥

इस गुरुगीता का पाठ कामनावालों के लिए कामधेनु है, कल्पना करने वालों के लिए कल्पवृक्ष है, चिन्तन करने वालों के लिए चिन्तामणि है, वह सर्व मंगल कारक है ॥ १४९ ॥

मोक्ष की इच्छा से जो नित्य इसका जप करता है, वह मोक्ष-लक्ष्मी को प्राप्त करता है और जो भोग की कामना से करता है, उसको इच्छित फल की प्राप्ति होती है ॥ १५० ॥

शक्ति के उपासक, सूर्योपासक, गणपति, विष्णु और शिव के उपासकों को सत्य ही सिद्धिप्रद गुरुगीता का जप करना चाहिए, इसमें जरा भी संशय नहीं है ॥ १५१ ॥

हे सुमुखि, काम्य-फल की प्राप्ति के हेतु किये जाने वाले जप के स्थानों का वर्णन करता हूँ। समुद्र या नदी के किनारे, शिव या विष्णु के मन्दिर में, शक्ति के देवालय में, गोशाला में, सब देवालयों में, वटवृक्ष या धतूरे वृक्ष के मूल में, मठ में, तुलसीवन में तथा पवित्र निर्मल स्थान में नित्य अनुष्ठान करते हुए शान्त और मौन भाव से इस का जप करना चाहिये ॥ १५२, १५३, १५४ ॥

श्मशान में, भय भूमि में, वट–मूल के निकट, धतूरे के मूल में तथा आम्रवृक्ष के निकट इसका पाठ करने से सिद्धि होती है ॥ १५५ ॥

गुरु–पुत्र मूर्ख (अनपढ़, मंदबुद्धिवाला) होने पर भी उसके दीक्षा, व्रत, तप आदि शुभकार्य सिद्ध होते हैं, व्यर्थ नहीं होते ॥ १५६ ॥

संसार के मलों का नाश करने के लिये, भवबन्धन से मुक्त होने के लिये तत्त्वज्ञानी गुरुगीतारूपी जल में सदा स्नान करता हैं ॥ १५७ ॥

जो सद्ब्रह्म को जानने वालों में श्रेष्ठ हैं, वे ही साक्षात् गुरु हैं। गुरु जिन स्थानों में निवास करते हैं, वे सभी स्थान पवित्र हैं, इसमें संशय नहीं ॥ १५८ ॥

सर्व शुद्ध और पवित्र गुरुदेव जहाँ भी स्वभावतः रहते हैं, उस क्षेत्र या पीठ में समस्त देवताओं का समुदाय निवास करता है ॥ १५९ ॥

आसन पर बैठा हो, सोता हो, चलता हो, घोड़े पर बैठा हो, हाथी पर सवारी किये हो, सुषुप्ति में हो या जागता हो, ऐसा नित्य ज्ञानी पुरुष, जो गुरुगीता के जप से पवित्र बन गया है, यदि उपर्युक्त अवस्था में उसके दर्शन हों तो दर्शनमात्र से पुनर्जन्म नहीं होता ॥१६०, १६१॥

जैसे समुद्र में पानी, दूध में दूध, घी में घी और आकाश में घटा-काश मिल जाता है, वैसे ही परमात्मा में जीवात्मा मिल जाता है ॥१६२॥

और इसी प्रकार ज्ञानी जीवात्मा परमात्मा में लीन होता हैं। इस एकत्व को प्राप्त करनेवाला ज्ञानी रात-दिन कहीं भी आनन्द में मग्न रहता है ॥ १६३ ॥

इस प्रकार ज्ञानी सदा जीवन्मुक्त होकर रहता है। जो साधक सर्व प्रयत्नपूर्वक भावपूर्ण होकर उसकी भक्ति करता है, वह सन्देहरहित होकर मुक्त होता है। वह भुक्ति और मुक्ति दोनों को प्राप्त करता है, उसकी जिह्वा के अग्रभाग पर सरस्वती वास करती है ॥ १६४, १६५ ॥

गुरुगीता के जप से सब प्राणी सर्व सिद्धियों को प्राप्त करते हैं, तथा उन्हें भोग और मोक्ष, दोनों की प्राप्ति होती है, इसमें सन्देह नहीं ॥ १६६ ॥

मेरे द्वारा कहा गया यह धर्मयुक्त ज्ञान सत्य है, सत्य है, पूर्ण सत्य है। हे सुमुखि, गुरुगीता के समान सचमुच और कुछ नहीं है ॥ १६७ ॥

एक ही देव, एक ही धर्म, एक ही निष्ठा यह परम श्रेष्ठ तप है। गुरु से परे कुछ नहीं है; गुरु से आगे अन्य कोई तत्त्व नहीं है ॥ १६८ ॥

हे देवी! गुरुभक्त के माता-पिता, कुल, वंश और पृथ्वी भी धन्य हैं। गुरुभक्ति बहुत ही दुर्लभ है ॥ १६९ ॥

हे देवी! शरीर, इन्द्रिय, प्राण, धन, स्वजन, बांधव, माता-पिता, कुल, सब कुछ गुरु हैं. इसमें संशय नहीं है ॥ १७० ॥

हे देवी! कल्पपर्यन्त या करोड़ों जन्म के जप, व्रत, तप और दूसरी शास्त्रोक्त क्रियाएँ, ये सब एक मात्र गुरु को सन्तुष्ट करने से सफल होती हैं ॥ १७१ ॥

हे सुंदरी! विद्याबल या तपोबल से गर्वित जो मानव एवं ब्रह्मा, विष्णु, महेश, देवर्षि, पितर, किन्नर, सिद्ध-चारण, यक्ष तथा अन्य मुनिजन गुरुसेवा नहीं करते, वे सचमुच ही बड़े अभागे हैं ॥ १७२, १७३ ॥

गुरुभाव यह श्रेष्ठ तीर्थ है, अन्य तीर्थ निरर्थक हैं। हे देवी, श्रीगुरु के चरण के अंगूठे के आश्रय में सर्व तीर्थ रहते हैं ॥ १७४ ॥

इस गुरुगीता का जप करने से मनुष्य जय प्राप्त करता है और अनंत फल पाता है। हीन कर्म और अधम स्थानों को त्याग कर इस जप को करना चाहिये ॥ १७५ ॥

हीनासन पर गुरुगीता का जप करना हीन फल देने वाला है। प्रस्थान के समय, शत्रु का संकट उपस्थित होने पर जप करने से जय की प्राप्ति होती है और मरने पर यह जप मुक्ति देता है। गुरुपुत्र के सभी कर्म सर्वत्र सिद्ध होते हैं ॥ १७६, १७७ ॥

तुम मेरी अत्यंत प्रिय हो, इसीलिये गुरुगीता का यह रहस्य मैंने तुम्हारे सामने कहा है। वह किसी के समक्ष भी प्रकट नहीं करना प्रयत्नपूर्वक इसको गुप्त रखना ॥ १७८ ॥

हे पार्वती! कार्तिकस्वामी, गणेश आदि मुख्य गण तथा विष्णु आदि देवों को भी मन से भी मत कहना, मैं तुमसे सत्य सत्य कहता हूँ ॥ १७९ ॥

हे देवी, जिसका चित्त पूर्ण परिपक्व और श्रद्धा तथा भक्तियुक्त हो, उसको यह उपदेश कहना। हे प्रिये, तुम सदा मेरी आत्मा हो ॥ १८० ॥

अभक्त, ठग, नीच, पाखण्डी और नास्तिक मनुष्य को गुरुगीता कहने का कभी मन से भी विचार नहीं करना चाहिये ॥ १८१ ॥

संसाररूपी सागर से उद्धार करनेवाला जो एकमात्र मंत्र है; ब्रह्मा, विष्णु महेश इंद्रादि देवों तथा नारद आदि सब मुनियों से पूजित जो सिद्धमन्त्र है; दरिद्रता, दुःख आदि सारे भवरोगों को नष्ट करनेवाला जो मन्त्र है; जो मृत्युरूपी महाभय का हरण करता है, ऐसे सर्वश्रेष्ठ गुरुगीतारूप गुरुमंत्र को मैं नमन करता हूँ ॥ १८२ ॥

इस प्रकार स्कन्दपुराण के उत्तर खण्ड में ईश्वर–पार्वती–संवादरूप श्रीगुरुगीता संपूर्ण हुई ॥

श्रीगुरुदेव के चरणों में अर्पण हो ॥

श्रीअवधूतस्तोत्रम्

शिष्यों के संसार-प्रपंच का हरण करने वाले, केवल भक्तों के कारण ही सगुण देहधारी चित्स्वरूप, सत्स्वरूप और नित्य आनन्द स्वरूप मुक्तानन्द गुरुदेव को नमस्कार है ॥ १ ॥

किसी भी वासना से रहित, जिनकी कोई इच्छा नहीं है, सभी दोषों से रहित, आलम्बनरहित, सर्व दुःखों से मुक्त श्रीनित्यानन्द गुरुदेव को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २ ॥

जिनकी किसी भी पदार्थ पर ममता नहीं है, जो अहंकार रहित हैं, जिनकी दृष्टि में पत्थर, लोहा और सोना समान है, सुख-दुःख के द्वन्द्व में समतायुक्त, अत्यन्त धैर्यवाले अवधूत स्वामी नित्यानन्द को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ३ ॥

एक अविनाशी आत्मा को जिन्होंने तात्त्विक रूप से जान लिया है, जो राग-द्वेष-भय-क्रोध से रहित हैं, उन नित्यानन्द को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ४ ॥

मैं देह नहीं हूँ, देह मेरी नहीं है, मैं जीव भी नहीं हूँ, मैं तो चित्स्वरूप हूँ, ऐसा जानकर जो सदा सन्तुष्ट हैं, ऐसे अवधूत नित्यानन्द भगवान को मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ५ ॥

अन्य जो कुछ भी है, वह कल्पनामात्र है, आत्मा तो सदासर्वदा मुक्त और सनातन ही है, ऐसा जानकर जो तृप्त हैं, ऐसे नित्यानन्द भगवान को मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ६ ॥

ज्ञानरूपी अग्नि से जिन्होंने सब कर्मों को भस्म कर दिया है, कामना और संकल्प से जो रहित हैं, जिनके लिये कोई पदार्थ त्याज्य भी नहीं, एवं स्वीकार करने योग्य भी नहीं, ऐसे अवधूत भगवान नित्यानन्द को मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ७ ॥

जो स्वभाव से ही योगी हैं, भोग-सुख की जिनको इच्छा भी नहीं होती और ईश्वरेच्छा से प्राप्त पदार्थों से जो सन्तुष्ट हैं, ऐसे गुरुदेव नित्यानन्द को मै प्रणाम करता हूँ ॥ ८ ॥

किसी भी प्रकार की निन्दा और स्तुति से जिनके मन में विकार उत्पन्न नहीं होता, अपने आत्माराम में मस्त महान् पुरुष नित्यानन्द अवधूत को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ९ ॥

जो जाग्रत-अवस्था में भी स्वप्न की तरह रहते हैं, अर्थात् बाह्य पदार्थों को स्वप्न के दृश्य के समान देखते हैं, किसी भी विषय के चिन्तन से मुक्त, चिन्मयस्वरूप नित्यानन्द भगवान को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १० ॥

जिनको किसी से द्वेष नहीं है और प्रीति भी नहीं है, जिनके लिये कोई शुभ भी नहीं और अशुभ भी नहीं, जो द्वैतज्ञान से रहित हैं उन परम अवधूत को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ११ ॥

जो जगत के किसी भी पदार्थ को जड़ नहीं समझते, अपितु जगत को चिन्मय रूप में देखते हैं, जो नित्य योगी और तीनों गुणों से परे हैं, उन नित्यानन्द भगवान को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १२ ॥

जो दर्शनमात्र से तीनों लोकों को पवित्र करते हैं, सर्व पवित्र चलते-फिरते तीर्थस्वरूप अवधूत भगवान को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १३ ॥

सभी जनों के पूज्य, सर्वदा पूर्ण स्वरूप, अखण्ड आनन्द जिनका शरीर है, ऐसे स्वयं प्रकाशित चिदानन्दस्वरूप गुरुदेव नित्यानन्द को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १४ ॥

कलारहित, क्रियारहित, शान्त, निर्मल, परम अमृतरूप, गणेशपुरी में रहने वाले अवधूत भगवान को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १५ ॥

सभी योगों से पूर्ण, साक्षात् तप की मूर्ति, प्रेममय, जिनका दर्शन आनन्ददायक है, ऐसे ज्ञान से पूर्ण, साक्षात् कृपा के अवतार नित्यानन्द भगवान को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १६ ॥

प्रार्थना

जो मनुष्य दुर्जन है, वह सज्जन बने। सज्जन मनुष्य को शान्ति प्राप्त हो। शान्त मनुष्य जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त हो और मुक्त पुरुष अन्य जनों को मुक्त करे ॥

प्रजाओं का कल्याण हो और राजा अथवा नेतागण न्याय के मार्ग से पृथ्वी का पालन करें। गौओं एवं ब्राह्मणों का नित्य मंगल हो। सभी लोग सुखी हों ॥

समय पर मेघ बरसे, पृथ्वी धन-धान्य से पूर्ण हो, यह देश किसी भी प्रकार के उद्वेग से रहित हो और ब्राह्मण-समुदाय भयरहित बने ॥

सभी सुखी हों, सभी निरोगी हों, सभी लोग सर्वत्र कल्याण को देखें, किसी को कभी दुःख न हो ॥

सभी दुर्ग की तरह खड़ी बाधाओं को पार कर लें, सभी मंगल को देखें। सभी की कामनाएँ परिपूर्ण हों, सभी सर्वत्र आनन्द प्राप्त करें ॥

हमारे माता और पिता का कल्याण हो। गायों का कल्याण हो, जगत के सभी मनुष्यों का मंगल हो। यह विश्व हमारे लिये दिव्य समृद्धि वाला बने। हम अपने अन्तर्यामी आत्मरूपी सूर्य को देखें ॥

॥ शान्ति हो, शान्ति हो, शान्ति हो ॥

श्रीशिवमहिम्नस्तोत्र

पुष्पदन्त बोले

सर्व जनों के ताप और पाप हरने वाले हे शिव! निर्गुण-निराकार आपकी महिमा को पूर्ण रूप से न समझने वाले मनुष्य द्वारा की गयी आपकी स्तुति यदि आपके योग्य नहीं है तो फिर ब्रह्मा आदि देवों द्वारा की हुई स्तुति भी आपके विषय में अयोग्य ही है। यदि सभी अपनी अपनी बुद्धि-शक्ति के अनुरूप ही स्तुति करने में निर्दोष हैं, तो हे शिव! आपकी स्तुति करने में मेरा यह प्रयत्न भी अनिन्दनीय होना चाहिये ॥ १ ॥

हे महादेव, आपकी महिमा वाणी और मन के विषय से भी परे है, क्योंकि आपकी महिमा को वेद भी कहीं अनुचित वर्णन न हो इस भय से आश्चर्यचकित होकर कहते हैं। उस परमात्मा की कौन स्तुति कर सकता है, उसके कितने गुण हैं, वह किसका विषय है इन सब बातों को कौन जान सकता है? फिर भी ऐसा कौन है जिसका मन और वाणी आपके इस परम रमणीय स्वरूप में तन्मय नहीं हो जाते हैं ॥ २ ॥

हे परब्रह्मस्वरूप शिव, संसार के मधुर पदार्थों से भी अतिशय मधुर अमृतमय वेदवाणी को बनानेवाले देवताओं के गुरु बृहस्पति की वाणी भी आपको आश्चर्य में नहीं डाल सकती, वह भी आपके लिये साधारण ही है। फिर हे त्रिपुरारि, मैं अपनी इस वाणी को आपके गुण-गान करने के पुण्य से पवित्र कर लूँ, ऐसा सोचकर आपके स्तुतिरूप कार्य में मेरी बुद्धि तत्पर हुई है ॥ ३ ॥

हे वरदान देने वाले शिव! जगत का उदय, पालन एवं प्रलय करने वाले आपके ऐश्वर्य का ऋग, यजुर् और सामवेद वास्तविक रूप से प्रतिपादन करते हैं तथा सत्त्व, रज और तम इन तीनों गुणों के भेद से ब्रह्मा, विष्णु, महेश की अलग-अलग तीन शरीर-मूर्तियों में बँटा हुआ, ब्रह्माण्ड भर में प्रसिद्ध जो आपका ऐश्वर्य है, उसका खण्डन करने के लिये

कुछ जड़ बुद्धि के लोग, दुष्ट बुद्धि के लोगों को अच्छी लगनेवाली, लेकिन वास्तव में अहितकर मिथ्या–चर्चा को करते रहते हैं ॥ ४ ॥

तीनों लोकों का निर्माण करने वाला ब्रह्मा किस इच्छा से, किस शरीर से, किन उपायों द्वारा, क्या आधार लेकर, कौनसी सामग्री द्वारा त्रिभुवन की रचना करता है इस प्रकार का यह कुतर्क अथवा प्रश्न-जाल आपके तर्कातीत ऐश्वर्य में अवकाश न पाने के कारण डाँवाडोल स्थिति वाले जगत को अज्ञान में रखने के लिये कुछ बुद्धिहीन लोगों को वाचाल बनाता रहता है ॥ ५ ॥

देवताओं में श्रेष्ठ हे शिव, प्रत्यक्ष अनुभव में आने वाले ये पृथ्वी आदि लोक अवयवों से युक्त होने पर भी क्या जन्मरहित हो सकते हैं ? क्या जगत के विधि अर्थात् उत्पत्ति-विलय आदि कार्य, कर्ता के बिना हो सकते हैं ? और यदि ईश्वर से भिन्न किसी अन्य ने लोकों की उत्पत्ति की है तो उसकी साधन-सामग्री क्या थी ? इसलिये वे मन्दभाग्य और मन्दबुद्धि ही हैं जो आपके विषय में ऐसी शंकाएँ किया करते है ॥ ६ ॥

तीनों वेद, सांख्य, योगशास्त्र, शैवमत, वैष्णवमत आदि भिन्न भिन्न मतमतान्तरवाले हमारा मार्ग ही अन्य सब मार्गों से श्रेष्ठ और चलने योग्य है, ऐसा कहा करते हैं। वस्तुतः जैसे सीधे और टेढ़ेमेढ़े अनेक मार्गों से जाने पर भी जलप्रवाह का गन्तव्यस्थान समुद्र ही होता है, वैसे ही रुचियों की भिन्नता होने के कारण अनेक सीधे और टेढ़े मार्गों से जानेवाले सभी मनुष्यों के लिये आप ही प्राप्त करने योग्य हैं ॥ ७ ॥

हे वरदान देने वाले शिव, आपके गृह-तन्त्र को चलाने की सामग्री में एक तो बूढ़ा बैल है, दूसरा खाट का एक पाया है, परशु है, मृगचर्म, भस्म और कुछ सर्प हैं तथा खप्पर है—इतनी ही आपकी सामग्री है, किन्तु देवगण आपकी भौंहों के कटाक्ष से ही ऋद्धि-सिद्धियों को प्राप्त करते हैं। वस्तुतः जो अपने ही स्वरूप में रमा हुआ है, उसे विषयों की लालसा कभी भी भ्रम में नहीं डाल सकती ॥ ८ ॥

हे त्रिपुरारि, कोई सांख्य मत को मानने वाला इस समस्त जगत को नित्य अथवा अविनाशी कहता है, कोई बौद्ध मत को मानने वाला सारे ब्रह्माण्ड के पदार्थसमुदाय को अनित्य अथवा नाशवान घोषित करता है, दूसरे कोई न्यायदर्शन अथवा वैशेषिक मत के अनुयायी जगत के कुछ पदार्थों को नित्य और कुछ पदार्थों को अनित्य मानते हैं। इन सब मत-मतान्तरों में आश्चर्यचकित होकर भी उन्हीं मत-मतान्तरों के द्वारा आपकी स्तुति करता हुआ लज्जित नहीं हो रहा हूँ। सचमुच वाचालता ढीठ हुआ करती है ॥ ९ ॥

हे गिरीश, आग के खम्भे के समान आपके ज्योतिर्लिङ्ग के ऐश्वर्य की थाह पाने के लिये ब्रह्मा उस लिङ्ग के ऊपर के भाग में और विष्णु नीचे के भाग में पूर्ण प्रयत्नपूर्वक गये, फिर भी उसका पार नहीं पा सके। तब अपनी शक्ति का गर्व छोड़कर वे दोनों भक्ति और श्रद्धा के भार से नम्र होकर आपका महान गुणगान करते हुए आपके ज्योतिर्लिङ्ग के सामने खड़े रहे। हे शिव, श्रद्धा और भक्ति के साथ किया हुआ आपका अनुसरण क्या फल नहीं देता! ॥ १० ॥

हे त्रिपुरारि, रावण तीनों लोकों को बिना प्रयत्न के ही जीतकर और निष्कंटक बनकर त्रैलोक्य में अपने साथ युद्ध करने के लिये कोई प्रतिस्पर्धी योद्धा न मिलने के कारण युद्ध की खोज से परेशान बीस भुजाओं को धारण किये हुए स्वच्छन्द बिहरा करता है। यह सब आपके प्रति उसकी स्थिर भक्ति के प्रताप का ही फल है, क्योंकि उसने आपके चरणकमलों की पूजा के लिये अपने सिरों को काट-काटकर कमलों की माला सदृश आपके चरणों में चढ़ाया था ॥ ११ ॥

आपकी सेवा-भक्ति से प्राप्त हुई शक्ति से सम्पन्न अपनी भुजाओं के बल को आपके निवासस्थान कैलास पर्वत पर ही आज़मानेवाले रावण की क्या दशा हुई? आपके पैर के अँगूठे का अग्रभाग जरा सा हिल गया कि उसे पाताल में भी ठहराव नहीं मिला। निश्चय ही जो दुष्ट होता है वह सम्मान पाकर मोह में फँस जाता है ॥ १२ ॥

हे वरदान देने वाले शिव, समस्त त्रैलोक्य को अपनी आज्ञा में रखनेवाले बाणासुर ने इन्द्र की सर्वोत्कृष्ट सम्पदाओं के भी नीचे कर दिया, यह आपके चरणों में सेवाभाव से रहने का ही फल है, इसमें आश्चर्य नहीं! क्योंकि आपके चरणों में होनेवाली मस्तक की नम्रता कौनसी उन्नति का कारण नहीं बनती? ॥ १३ ॥

हे त्रिनयन, समुद्र-मन्थन से उत्पन्न विष से समस्त ब्रह्माण्ड के अकाल विनाश का भय उपस्थित हो गया, तब भय से कातर हुए देवों और असुरों पर कृपालु होकर आपने उस कालकूट विष को कण्ठ में समेट लिया; इस कारण आपके कण्ठ पर जो काला दाग लग गया है, वह क्या आपके गले की शोभा को नहीं बढ़ाता, अर्थात् बढ़ाता ही है। जगत के भय का विनाश करने में नित्य संलग्न श्रेष्ठ पुरुषों का विकार भी प्रशंसनीय होता है। इसलिए आपका नीलकण्ठ नाम प्रशंसनीय ही है ॥ १४ ॥

हे सर्वेश्वर! जिसके तीक्ष्ण बाण, देव, दानव और मनुष्यों से भरे हुए जगत में अपने अर्थ को सिद्ध किये बिना कहीं से कभी नहीं लौटते हैं, और जो सर्वत्र विजयी है ऐसा वह कामदेव आपको अन्य देवताओं के समान सामान्य देव समझता हुआ आपके तृतीय नेत्र की अग्नि से जलकर भस्म हो गया; क्योंकि जो जितेन्द्रिय हैं, उनका अनादर हितकर नहीं होता ॥१५॥

हे नटराज, जब आप ताण्डव-नृत्य करते हैं तब आपके चरणों के आघात से पृथ्वी की स्थिति अचानक संशय का कारण बन जाती है, अर्थात् आपके पदाघात को न सह पाने के कारण उसकी क्या गति होगी, ऐसी सन्देह-अवस्था को प्राप्त करती है। आकाश में आपकी घूमती हुई भुजाओं के कारण बाधित ग्रहनक्षत्रों का समूह विकल हो उठता है। आपकी खुली हुई जटाओं का आघात किसी किनारे में लग जानेके के कारण द्युलोक भी बार बार अपनी स्थिति से इधर-उधर ढुलक रहा है। यद्यपि आप जगत की रक्षा के लिए नृत्य करते हैं, तो भी जो ईशता अथवा स्वामित्व है, वह विपरीत ही हुआ करती है याने दुःख का कारण बन जाती है! ॥१६॥

हे गंगाधर शिव, समस्त आकाश को घेरनेवाला और प्रतिबिम्बित तारों की चमक से फेन और बुद्बुदों की बढ़ी शोभा वाला जो जल का प्रवाह है, वह आपके सिर पर लघु जलकण के समान देखा गया था, लेकिन उसी जलकण ने प्रचण्ड प्रवाह बन कर जगत को समुद्ररूप करधनी से घेर कर एक छोटे से द्वीप के समान बना दिया है। इसी से आपका दिव्य शरीर महिमा को धारण करने वाला है, ऐसा समझना चाहिये ॥ १७ ॥

हे त्रिपुरारि, त्रिपुरासुररूपी तृण को जलाने की इच्छावाले आपने पृथ्वी को रथ बनाया, ब्रह्मा को सारथी बनाया, सुमेरु पर्वत को धनुष बनाया, चन्द्रमा तथा सूर्य को रथ के पहियों के रूप में कर दिया और हाथ में चक्र धारण करने वाले विष्णु भगवान को बाण बना दिया, तो इतने छोटे से काम के लिये इतना भारी आडम्बर रचने की क्या आवश्यकता थी? वस्तुतः अपनी निर्मित वस्तुओं से खेलती हुई प्रभावशाली पुरुषों की बुद्धि पराधीन नहीं हुआ करती, वे जो चाहे करते हैं ॥ १८ ॥

हे त्रिपुरारि, भगवान विष्णु ने आपके चरणों में एक हजार कमल-पुष्पों की भेंट चढ़ाने का नियम किया। उन कमलों में एक कमल कम हो जाने पर उन्होंने जो अपने नेत्रकमल को उखाड़ कर चढ़ा दिया, वही भक्ति का अतिरेक सुदर्शन चक्ररूप में परिणत हो गया और तीनों लोकों की रक्षा के लिये आज भी सावधान है ॥ १९ ॥

यज्ञयागादि कर्म करने वाले पुण्यशाली जनों के यज्ञादि कार्य निवृत्त हो जाने पर भी फल देने के लिये आप सदा जाग्रत रहते हैं। कर्म तो करने के बाद नष्ट हो गया, चैत्यपुरुष शिव की आराधना के बिना कहीं वह फल दे सकता है, अर्थात् नहीं दे सकता। इसलिये आपको यज्ञादि कर्मों में फल देने की शक्ति से संपन्न मानकर ही मनुष्य वेदों में विश्वास को प्रगाढ़ बनाकर कर्मों के करने में दृढ़ता के साथ तत्पर रहता है कि आप फल अवश्य देंगे ॥ २० ॥

हे शरणागतवत्सल शिव, यज्ञादि क्रिया में निपुण, देहधारी प्रजाओं का स्वामी दक्ष स्वयं यज्ञ कराने वाला यजमान था, बड़े बड़े महर्षि ऋत्विक् आदि की क्रिया करने वाले थे, देवतागण उस यज्ञ के सम्माननीय सदस्य थे, तो भी यज्ञ-फल का विधान करने में सदा लगे हुए आपके द्वारा ही दक्ष-यज्ञ का विनाश हुआ। वह निश्चित ही था, क्योंकि यज्ञकर्ता की श्रद्धा के बिना किये गये यज्ञ का फल भी विपरीत हुआ करता है ॥ २१ ॥

हे नाथ, काम के वशीभूत होकर ब्रह्मा ने अपनी पुत्री के साथ बलपूर्वक रमण करने की इच्छा की, तो वह मृगी बन गयी; फिर ब्रह्मा भी मृग का रूप धारण करके उसके पीछे गये। आपने भी हाथ में धनुष उठाया और मृगरूपधारी ब्रह्मा को लक्ष्य करके व्याध की कुशलता से एक अमोघ बाण छोड़ा, जो आकाश में पहुँचे हुए भयभीत ब्रह्मा को आज भी नहीं छोड़ रहा है ॥ २२ ॥

हे त्रिपुरविनाशक शिव, कामदेव ने सर्वसौन्दर्यों की साम्राज्ञी पार्वती के सौन्दर्य से आपको जीत लेने की कामना से अपना धनुष उठाया था, किन्तु हे योगीश्वर, पार्वती ने अपने सामने ही कामदेव को तृण की तरह जलता हुआ देखा। हे वरदान देनेवाले शम्भो, पार्वती पर कृपा करके आपने जो उन्हें अपने वामांग में बैठा लिया है, इसलिये यदि वे आपको स्त्री में अनुरक्त समझती हैं तो हे प्रभो, वे समझती रहें; क्योंकि स्त्रियाँ तो भोली भाली हुआ ही करती हैं ॥ २३ ॥

हे कामान्तक, श्मशानों में आनन्द से खेलना, पिशाचों के साथ विचरना, चिताओं की राख से शरीर का आलेपन, मनुष्यों की खोपड़ियों से बनी हुई माला, इस प्रकार आपका सम्पूर्ण आचरण अमंगलजनक भले ही हो, तो भी हे वरदाता, स्मरण करनेवालों के लिये तो आप सबसे बढ़कर मंगलरूप हैं ॥ २४ ॥

योगी लोग योगशास्त्रों में वर्णन की हुई विधि के अनुसार प्राणायाम द्वारा प्राणवायु का निरोध करके और मन को अन्तरात्मा में एकाग्र करके जिस अनिर्वचनीय तत्त्व का अपने अन्दर ही दर्शन करके रोमांचित होते हैं तथा नेत्रों से आनन्दाश्रु के प्रवाह को उंडेलते हुए मानो अमृतमय सरोवर में निमग्न होकर जिस परमानन्द को प्राप्त करते हैं, वह तत्त्व आप ही तो हैं ॥ २५ ॥

आप सूर्य हैं, आप चन्द्र हैं, आप पवन हैं, आप अग्नि हैं, आप जल हैं, आप आकाश हैं, आप पृथ्वी हैं और आप ही आत्मा हैं—इस प्रकार आपकी अष्टमूर्तियों का वर्णन मिलता है। केवल इन आठ मूर्तियों में आग्रह-बुद्धि रखनेवाले लोग आपके विषय में संकुचित और सीमित वाणी को भले ही बोलते रहें, किन्तु हम तो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में किसी ऐसे तत्त्व को नहीं जानते जो कि आप न हों ॥ २६ ॥

हे शरणागतवत्सल शिव ! ॐ यह पद अकार, उकार, मकार इन तीन अक्षरों में विभक्त होकर ऋक्, यजुर्, साम इन तीन वेदों के रूप में; ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन तीन देवों के रूप में; जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति इन तीन अवस्थाओं के रूप में; भूः, भुवः, स्वः इन तीन लोकों के रूप में और अन्य सभी त्रिपुटियों के रूप में आपका ही कथन करता है और वही ॐ पद विभक्त न होकर विकाररहित शुद्ध सर्व त्रिपुटियों से परे आपके तुरीय पद का सूक्ष्म ध्वनियों द्वारा लक्ष्य करता हुआ वर्णन करता है ॥ २७ ॥

हे देव ! भव, शर्व, रुद्र, पशुपति, उग्र, महादेव, भीम और ईशान इस प्रकार ये जो आपके आठ नाम हैं, इनमें से प्रत्येक नाम की वेद भी प्रचुर विचार तथा श्रद्धापूर्वक स्तुति करते रहते हैं; ऐसे परमप्रिय, परम ज्योतिस्वरूप आपको मैं मन, वचन, कर्म से नमस्कार करता हूँ ॥ २८ ॥

हे एकान्तप्रिय, समीप से भी समीप स्थित आपको नमस्कार हो, और दूर से भी सुदूर रहनेवाले आपको नमस्कार हो। हे काम-नाशक, अणु से भी अणुतर आपको नमस्कार हो और महान से भी महत्तर आपको नमस्कार हो। हे त्रिलोचन, वृद्ध से भी वृद्ध कालातीत आपको नमस्कार हो, और युवा से भी युवा आपको नमस्कार हो। सर्वरूप आपको नमस्कार हो, और यह-वह परोक्ष-प्रत्यक्ष सर्व अवस्थाओ से अतीत आपको नमस्कार हो ॥ २९॥

विश्व की उत्पत्ति के लिये पूर्ण रजोगुणी ब्रह्मारूप आप को बारम्बार नमस्कार है। प्राणियों को सुखी करने के लिये सत्त्वगुण के अतिरेक होने पर विश्वपालक विष्णुरूप आपको अनन्त बार नमस्कार है। विश्व का संहार करते समय प्रबल तमोगुणी रुद्ररूपधारी आपको बारम्बार नमस्कार है। पूर्ण प्रकाशरूप मोक्षपद की प्राप्ति के लिये त्रिगुणातीत शिवस्वरूप आपको बारम्बार नमस्कार है ॥ ३०॥

हे वरदायक! क्लेशों के अधीन, सर्व सामर्थ्यहीन यह मेरा चित्त कहाँ, और तीनों गुणों की सीमा का अतिक्रमण करनेवाली, तीनों कालो से परे चिरन्तन आप की महिमा कहाँ? इसलिये आपके स्तुतिगान में मैं भयभीत ही था, किन्तु आपके प्रति मेरी भक्ति ने मुझे उत्साहित करके आपके चरणों में महिम्नस्तोत्र के वाक्यरूप पुष्पों की भेंट चढ़वायी। यह स्तोत्र आपकी भक्ति का ही परिणाम है ॥ ३१ ॥

हे ईश, आपके दिव्य गुणों को लिखने के लिये समुद्र के पात्र में काले पहाड़ की स्याही बने, कल्पवृक्ष की शाखा ही कलम बने और पृथ्वी कागज़ बने और इन सबको लेकर सरस्वती देवी सारा समय लिखती रहे तो भी आपके गुणों का पार नहीं पा सकती ॥ ३२ ॥

देव, असुर और मुनियों द्वारा पूजित भगवान चन्द्रमौलि के गुणों की महिमा से युक्त, किन्तु वस्तुतः निर्गुण महादेव के इस सुन्दर स्तोत्र को सर्व गन्धर्वगणों में श्रेष्ठ पुष्पदन्त नामक गन्धर्व ने बड़े छन्दों में रचा है ॥३३॥

जो मनुष्य चित्त को पवित्र रखकर परम भक्ति के साथ शिव के परम पावन इस स्तोत्र का प्रतिदिन पाठ करता है वह इस लोक में विपुल धन-सम्पदा और दीर्घायु को पाकर पुत्रवान, कीर्तिमान तथा शिवलोक में रुद्र के समान होता है ॥ ३४ ॥

दीक्षा लेना, दान देना, तप करना, तीर्थ और योग-यज्ञ आदि सकल क्रियाएँ, हे शंकर! आपके महिम्नस्तोत्र के पाठ की सोलहवीं कला के योग्य भी नहीं हो सकतीं ॥ ३५ ॥

पुष्पदन्त गन्धर्व के द्वारा रचा गया पवित्र, अनुपम, मनोहर, मंगलमय, ईश्वरवर्णनयुक्त यह स्तोत्र समाप्त हुआ ॥ ३६ ॥

महेश्वर से बढ़कर कोई देव नहीं है, महिम्न स्तोत्र से बढ़कर अन्य कोई स्तुति नहीं है, प्रणव मन्त्र (ॐ) से बढ़कर दूसरा कोई मन्त्र नहीं है और गुरु से श्रेष्ठ कोई तत्त्व नहीं है ॥ ३७ ॥

पुष्पदन्त नाम का गन्धर्वों का एक राजा सिर पर बालचन्द्र को धारण करने वाले देवाधिदेव महादेव का भक्त था, वह शिव के कोप से अपनी महिमा को खो बैठा, तब उसने उन्हें प्रसन्न करने के लिये इस अतिशय दिव्य शिवमहिमा के स्तोत्र की रचना की, ऐसा सुना जाता है ॥ ३८ ॥

बड़े बड़े देव और मुनियों का जिसमें पूज्यभाव है, स्वर्ग एवं मोक्ष का मुख्य कारण, कभी निष्फल न जाने वाला, पुष्पदन्त द्वारा रचित इस स्तोत्र का कोई मनुष्य यदि हाथ जोड़कर, शिव में अनन्य चित्त रखकर पाठ करता है तो किन्नरों द्वारा सत्कार पाता हुआ शिव के पास पहुँच जाता है ॥ ३९ ॥

श्रीपुष्पदन्त के मुखकमल से निकले हुए, सब प्रकार के पापों को हरने वाले, भगवान शिव को सबसे अधिक प्रिय लगने वाले और समानरूप से सबका हित करने वाले इस स्तोत्र को कंठस्थ करके पाठ करते रहने पर पशुपति शंकर भगवान अत्यन्त प्रसन्न हो जाते हैं ॥ ४० ॥

पुष्पदन्त द्वारा यह वाङ्मयी अर्थात् शब्दमयी पूजा भगवान शंकर के चरणों में अर्पित की गयी। हे देवाधिदेव, हे सदाशिव महादेव! आप मुझ पर प्रसन्न हों ॥ ४१ ॥

हे देव, जो कोई अक्षर अथवा शब्द अशुद्ध हो गया हो, मात्रा छूट गयी हो, तो उन सब को क्षमा कीजिये, और हे प्रभो, आप सदा प्रसन्न रहें ॥ ४२ ॥

॥ शान्ति हो, शान्ति हो, शान्ति हो ॥

शिवमानसपूजा

दे देव ! हे दया के सागर पशुपति महादेव ! मैंने आपके लिये हीरे, माणिक, मोती आदि अनेक रत्नों से एक दिव्य सिंहासन कल्पित किया है। हे शिव, आपके लिये मैंने गंगा आदि हिमनदियों और हिमसरोवरों के जलों द्वारा स्नान का आयोजन किया है; दिव्य वस्त्र बनाये हैं; अनेक रत्नों से सुशोभित अलंकार हैं; कस्तूरी की सुगन्ध से युक्त चन्दन का अंग-लेप तैयार किया है; चमेली, चम्पा, बेल-पत्र, अन्य पुष्प एवं सुवासित धूप द्वारा पूजन–सामग्री की रचना की है; फिर मैं अपने हृदयरूपी अथवा हृदय द्वारा कल्पित दीपक को आपके सामने जलाता हूँ। हे सर्वान्तरयामी महादेव! आप मेरी इस पूजा को स्वीकार कीजिये ॥ १ ॥

मैंने सुवर्ण के नवरत्नजड़ित विविध पात्रों में आपके लिये घी, क्षीरान्न, पाँच प्रकार के दूध-दहीयुक्त पदार्थ भोजन के लिये रखे हैं, केले आदि फल भी हैं। भोजन में अनेक प्रकार के शाकभाजी अलग अलग पात्रों में मैंने रखे हैं; शुद्ध, निर्मल, सुस्वादु जल आपके पीने के लिये लाया हूँ। हे प्रभो, मैंने आपके लिये भक्तिपूर्ण मन से दिव्य गन्धों से युक्त एक पान बनाया है, आप इसे स्वीकार कीजिये ॥ २ ॥

हे प्रभु, मैं आपको छत्र समर्पित करता हूँ और दो चँवरों से बने पंखे को आप पर झलता हूँ। मैं आपके लिये एक अत्यन्त पवित्र, स्वच्छ दर्पण लाया हूँ। मैंने आपके लिये वीणा भेरी, मृदंग, करताल, मंजीरों की दिव्य ध्वनियों से युक्त गीत और नृत्य का आयोजन किया है। मैं आपको साष्टांग प्रणाम करता हूँ और अनेक दिव्य स्तोत्रों से आपका गुणगान करता हूँ। हे विश्वरूप परशिव, मेरी यह समस्त पूजा मानसिक संकल्प द्वारा रची गयी है। हे प्रभो, आप इसे ग्रहण कीजिये ॥ ३ ॥

हे शम्भो! हे सर्वसाक्षी प्रभो, आप ही मेरा आत्मा हैं, पार्वती मेरी बुद्धि हैं, आपके साथ विचरण करनेवाले गण आदि मेरे प्राण हैं, मेरा शरीर आपके निवास का मन्दिर है। मैं जिन जिन इन्द्रियों से जिन जिन विषयों का उपभोग करता हूँ, वह सब आपकी पूजा-रचना है। मेरी नींद समाधि-अवस्था है। मैं पैरों से जहाँ कहीं भी चलता-फिरता हूँ वह आपकी परिक्रमा ही है। मेरे मुख से निकलने वाली वाणी आपकी स्तुतियाँ हैं। हे महादेव, मैं जो जो भी कर्म करता हूँ, वह सब कुछ, वे सब क्रियाएँ आपकी आराधना हैं ॥ ४ ॥

हे करुणा के सागर! हे महादेव! हे सर्व देवाधिदेव! फिर भी अगर मुझसे, मेरे हाथों से, पैरों से, वाणी से, शरीर से, कर्म से, कानों से, नेत्रों से अथवा मानसिक रूप से जानते हुए या अनजान में कोई अपराध हो गया हो या होनेवाला हो तो हे प्रभु, ऐसे मेरे किसी भी अपराध को क्षमा करना। हे सदाशिव प्रभो, आप करुणा के सागर हैं, आपकी जय हो, जय हो ॥ ५ ॥

सायंप्रातः की आरती

भूत-प्रेतादिगणों द्वारा सेवित, कैथ एवं जामुन के फलों का उत्तम भोजन करने वाले, शोक का नाश करने वाले, उमा के पुत्र, गज-मुख, सर्व विघ्न दूर करने वाले गणेश के चरण-कमलों में मैं नमन करता हूँ ॥ २ ॥

जिनका स्वरूप सत्-चित् और आनन्दमय है, जो संसार के प्रपंचों से रहित हैं, शान्तस्वरूप हैं, जिनका अन्य कोई आलम्बन नहीं है, जो तेजोमूर्ति हैं, ऐसे शिवस्वरूप श्रीगुरुदेव को नमस्कार है ॥ ३ ॥

शिष्यों के संसार-प्रपंच का हरण करने वाले, केवल भक्तों के कारण ही सगुण देहधारी, चित्स्वरूप, सत्स्वरूप और नित्य आनंदस्वरूप गुरुदेव नित्यानन्द को नमस्कार है ॥ ४ ॥

मैं उमा के पति देवाधिदेव शिव की वन्दना करता हूँ। देवताओं के गुरु और जगत के कारणभूत शिव की मैं वन्दना करता हूँ। सर्पों के आभूषण पहनने वाले, मृगचर्म को धारण करने वाले, जीवों के स्वामी शिव की मैं वन्दना करता हूँ। सूर्य, चन्द्र और अग्नि जिनके तीन नेत्र हैं, ऐसे त्रिलोचन शिव की मैं वन्दना करता हूँ, विष्णु के प्रिय शिव की मैं वन्दना करता हूँ। भक्त जनों के परम आश्रयरूप और वरों के प्रदाता शिव की मैं वन्दना करता हूँ। कल्याणकारी और सभी प्राणियों को सुखी-शान्त बनाने वाले शिव की मैं वन्दना करता हूँ ॥ ५ ॥

स्वभाव से ही शान्त, पद्मासन में बैठे हुए, चन्द्रमा का मुकुट पहने हुए, पाँच मुखवाले, तीन नेत्रवाले, दायीं ओर के हाथों में त्रिशूल, वज्र, तलवार, परशु और अभयमुद्रा को धारण करने वाले, बाँयी ओर के हाथों में सर्प, पाश, घण्टा, डमरु और अंकुश धारण करने वाले, अनेक अलंकारों से विभूषित, शुद्ध स्फटिक मणि के समान कान्तिवाले पार्वती के पति को नमस्कार करता हूँ ॥ ६ ॥

कपूर के समान गौर वर्ण, करुणा-दया के अवतारस्वरूप, समस्त संसार के सारभूत, सर्पों के राजा शेषनाग को हार की तरह गले में पहने हुए, भवानी के साथ सबके हृदय-कमल में निवास करने वाले शिव को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ७ ॥

हे ईश, आपके दिव्य गुणों को लिखने के लिये समुद्र के पात्र में काला पर्वत स्याही बने, विशाल कल्पवृक्ष की शाखा-कलम बने, सम्पूर्ण पृथ्वी कागज बने, और इस सब सामग्री को लेकर सरस्वती अनन्त काल तक लिखती ही रहे, तब भी वह आपके गुणों का पार नहीं पा सकती ॥ ८ ॥

हे प्रभु, आप ही मेरी माता हैं, पिता भी आप हैं, बन्धु भी आप हैं और मित्र भी आप हैं, आप ही विद्या हैं और आप ही धन हैं, हे देवों के देव महादेव, आप ही मेरा सर्वस्व हैं ॥ ९ ॥

हाथों और पैरों से किये गये, वाणी और शरीर से पैदा हुए अथवा कानों और नेत्रों से उत्पन्न, मन से हुए अथवा किसी भी कर्म से उत्पन्न, जानकर किये गये या अनजान से किये गये मेरे किसी भी अपराध को, हे करुणा के सागर, हे महादेव, हे शंभो शंकर, क्षमा करो; हे प्रभो, आपकी जय हो, जय हो ॥ १० ॥

चन्द्र की कान्ति से देदीप्यमान मस्तक वाले, कामदेव को नाश करने वाले, गंगा को धारण करने वाले, कल्याण करने वाले, जिनका कण्ठ और जिनके कर्णों के छिद्र सर्पों से अलंकृत हैं, जिनके नेत्र से वैश्वानर अग्नि प्रकट हुई है, हाथी के चर्म का बना हुआ सुन्दर वस्त्र धारण करने वाले, तीनों लोकों के सारभूत, तापों को हरने वाले भगवान शिव में मोक्ष-प्राप्ति के लिये अपनी चित्त-वृत्ति को अचल बनाओ, अन्य कर्मों से क्या? ॥ ११ ॥

अज्ञान का हरण करने वाले, ॐकार स्वरूप उस 'तत्' पद से लक्षित पुरुष को हम जानें, महादेव का हम ध्यान करें, जिससे वह रुद्र हमें आगे की ओर प्रेरित करता रहे ॥ १२ ॥

हजार मूर्तियों वाले, सहस्र पैर-नेत्र-मस्तक-ऊरु और बाहु वाले, सहस्र नाम वाले और सहस्र कोटि युगों को धारण करने वाले, नित्य, अविनाशी, अनन्तपुरुष परमात्मा को नमस्कार हो, नमस्कार हो ॥ १३ ॥

विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र आदि देवताओं के द्वारा प्रार्थना करने पर जो कैलास पर्वत के ऊँचे शिखर से उतर कर अवतीर्ण हुए और जिन्होंने यतियों में श्रेष्ठ बनकर अपने सुवचनरूपी अमृत की वृष्टि से शाक्य आदि मनुष्यरूपी सिंहों द्वारा तीक्ष्ण नखों के आघात से मूर्च्छा को प्राप्त हुई वेदरूपी गौमाता को पुनः स्वस्थ बनाया, वही ये श्रीशंकराचार्य इस लोक की, संसाररूपी दावानल द्वारा जलने से निरन्तर रक्षा करें ॥ १४ ॥

जो भगवान शंकराचार्य संसाररूपी मरु प्रदेश में पड़े हुए सूर्य के प्रचण्ड ताप से व्याकुल मनुष्यों के लिए शीतलता देनेवाले पूर्णिमा के चन्द्र के समान हैं; घोर अज्ञानरूपी अन्धकार से घिरे और मार्ग में भटकते हुए जनों के लिये जो ज्ञानरूपी सूर्य हैं, धन, पुत्र और लोक आदि की कामनाओं से रहित जो यति-मुनियों का वर्ग है, उनके लिये जो सर्वदा कल्पवृक्ष के समान हैं, श्रीपद्मपाद आदि शिष्यमुनि समुदाय के सहित वे आचार्यों में श्रेष्ठ श्रीमत् शंकराचार्य हमारी रक्षा करें ॥ १५ ॥

ब्रह्मानन्दस्वरूप, सर्वोत्कृष्ट नित्य सुख को देने वाले, अज्ञानरहित, केवल मूर्तिमान ज्ञानस्वरूप, राग-द्वेषादि द्वन्द्व से रहित, आकाश की तरह सर्वव्यापी, 'तत्त्वमसि' ऐसे महावाक्य के लक्ष्य, एक, नित्य, मलरहित, अचल, सर्व की प्रज्ञा के साक्षीभूत, भावविकारों से अतीत, तीनों गुणों से रहित उन सद्गुरु को मैं नमन करता हूँ ॥ १६ ॥

जगत के आदि गुरु नारायण को, ब्रह्मा, वसिष्ठ और शक्ति को तथा उनके पुत्र पराशर को, उनके पुत्र व्यासदेव को, व्यासदेव के शिष्यपुत्र शुकदेव को, गौडपाद तथा उनके महान योगीन्द्र शिष्य

गोविन्दाचार्य को और उनके परम शिष्य श्रीशंकराचार्य को, उनके शिष्य-समुदाय में पद्मपाद, हस्तामलकाचार्य, तोटकाचार्य और वार्तिक बनाने वाले सुरेश्वराचार्य को तथा अपने अन्य सभी गुरुओं को मैं सतत नमस्कार करता हूँ ॥ १७ ॥

जो अपने अन्दर विद्यमान विश्व को दर्पण में दिखाई देने वाली नगरी के तुल्य देखते हैं और जैसे निद्रा के द्वारा स्वप्नादि बाहर उत्पन्न हुए से दिखाई देते हैं, वैसे ही जो अपने में रहने पर भी विश्व को माया के द्वारा बाहर उत्पन्न हुए के समान देखते हैं, जो प्रत्यक्ष अनुभव के समय अपने ही अद्वय स्वरूप का साक्षात्कार करा देते हैं, उन दक्षिणामूर्तिरूप शिव की गुरुमूर्ति को नमस्कार है ॥ १८ ॥

जिन्होंने संपूर्ण मण्डलाकार ब्रह्माण्ड को, चर और अचर जगत को व्याप्त कर रखा है, और जिन्होंने 'तत्त्वमसि' याने 'वह तू ही है' इस परम पद का दर्शन कराया है, ऐसे श्रीगुरुदेव को नमस्कार है ॥ १९ ॥

शिष्य के चित्त में ज्ञान की उत्पत्ति करने के कारण गुरुदेव ही ब्रह्मा हैं, उत्पन्न ज्ञान की रक्षा करने वाले गुरुदेव विष्णु भी हैं और मलों का नाश करने के कारण गुरुदेव ही महेश्वर हैं। गुरु साक्षात् साकार ब्रह्म हैं, ऐसे श्रीगुरुदेव को नमस्कार है ॥ २० ॥

वेद, स्मृति, पुराण आदि के भंडार, करुणा के आगार, लोगों को सुखी करने वाले भगवान शंकराचार्य को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २१ ॥

विष्णु के अवतार व्यासदेव को, जिन्होंने ब्रह्मसूत्र की रचना की और शंकर के अवतार शंकराचार्य को, जिन्होने उन पर भाष्य लिखा, इन दोनों भगवत्स्वरूपों की मैं बार-बार वन्दना कराता हूँ ॥ २२ ॥

जो ईश्वर, गुरु और आत्मा इन तीन भिन्न रूपों में विभक्त होने पर भी आकाश की तरह सर्वव्यापी और अविभक्त स्वरूप में हैं, उन दक्षिणामूर्ति शिवगुरु को नमस्कार है ॥ २३ ॥

ब्रह्मज्ञानी विद्वानों ने सत्कर्मरूपी यज्ञ द्वारा यज्ञस्वरूप परमात्मा की आराधना की। यज्ञ के लिये किये जाने वाले सभी शुभकर्म पहले धर्म के रूप में जाने जाते थे। तत्त्व को जानने वाले वे विद्वान उन यज्ञकर्मों से महिमाशाली बनकर स्वर्ग को प्राप्त हुए जहाँ साधना के लक्ष्यरूप अनेक देवता रहते हैं ॥ २४ ॥

राजाओं के भी राजा, तुरन्त सहाय करने वाले कुबेर भगवान को हम नमस्कार करते हैं। वे कामेश्वर कुबेर कामनाओं की कामना करने वाले मेरे लिये कामनाओं का दान करें। वैश्रवण कुल में उत्पन्न, महाराजा कुबेर को नमस्कार है ॥ २५ ॥

वह सर्वत्र आँखों वाला, सब तरफ मुख वाला, सर्वत्र हाथ वाला और सर्वत्र पैरों वाला है। वह परमात्मा मनुष्य आदि प्राणियों को दो हाथों से और पक्षियों को दो पँखों से युक्त करता है। वह पृथ्वी और आकाश को उत्पन्न करने वाला परमेश्वर एक ही है ॥ २६ ॥

यथासमय उत्पन्न होने वाले अनेक सुगन्धित पुष्पों की पुष्पांजलि मैं आपको अपर्ण करता हूँ, हे परमेश्वर! आप ग्रहण करें ॥ २७ ॥

यह मेरी वाणीरूप पूजा है जिसे मैंने भगवान शंकर के चरणों में अर्पित किया है। इस पूजा से देवों के देव भगवान सदाशिव मुझ पर प्रसन्न हों ॥ २८ ॥

इस वाङ्मयी पूजा में कोई अक्षर, शब्द अथवा मात्रा आदि की न्यूनता से कोई दोष आ गया हो, तो हे परमेश्वर, उन सबको क्षमा करना, हे देव, मुझ पर प्रसन्न रहना ॥ २९ ॥

परमात्मा पूर्ण है, यह जगत भी पूर्ण है, पूर्ण से ही पूर्ण बन सकता है। पूर्ण में से पूर्ण ले लेने पर भी पूर्ण ही शेष रहता है ॥ ३० ॥

॥ शान्ति हो, शान्ति हो, शान्ति हो ॥

उपनिषद् मन्त्र

जिस तरह जगत में व्याप्त एक ही अग्नि अलग अलग पदार्थों की संगति से उन-उन रूपों को धारण करती है, उसी तरह सर्व भूतों के अन्दर रहनेवाला आत्मा एक होते हुए भी हर एक रूपधारी के साथ उस उस रूप का बनता है और उसके बाहर अलिप्त भी रहता है ॥३१॥

जिस तरह एक ही वायु जगत में प्रवेश करके अलग अलग पदार्थों के आधार से उन उन आकारों को धारण करती है, उसी तरह सर्व भूतों के अन्दर रहनेवाला आत्मा एक होते हुए भी हरएक रूपधारी के साथ उस उस रूप का बनता है और उसके बाहर अलिप्तभाव से भी रहता है ॥ ३२ ॥

सब लोकों का नेत्ररूप सूर्य जिस तरह साधारण नेत्रों के बाह्यदोषों से अछूता रहता है, उसी तरह सब भूतों के अन्दर रहनेवाला आत्मा बाहर भी अलिप्त भाव से रहने के कारण लोक-दुःख से लिप्त नहीं होता ॥ ३३ ॥

जो धीरपुरुष एक, स्वायत्त, सब भूतों में व्याप्त, एक ही स्वरूप को अनेक तरह से बनानेवाले परमेश्वर को अपने में स्थित देख लेते हैं, उन्हीं को शाश्वत सुख मिलता है, दूसरों को नहीं ॥ ३४ ॥

जो धीरपुरुष सब अनित्य पदार्थों में पाये जानेवाले एक, नित्य और सभी चेतन पदार्थों को चेतना देनेवाले, स्वयं एक होकर अनेकों की कामनाओं को पूर्ण करनेवाले परमेश्वर को अपने में स्थित देख लेते हैं, उन्हीं को शाश्वत शान्ति मिलती है, दूसरों को नहीं ॥ ३५ ॥

शुक बोले

हे राजन् ! महाप्रसाद में, गोविंद में, भगवन्नाम में, ब्रह्मज्ञानी में, वैष्णव जन में अल्प पुण्यशाली पुरुषों को ही विश्वास नहीं होता है ॥ ३६ ॥

शैव 'शिव'रूप से जिनकी उपासना करते हैं, वेदान्ती 'ब्रह्म'रूप से, बौद्ध 'बुद्ध' कहकर, प्रमाण में कुशल नैय्यायिक 'कर्त्ता'रूप से, जैन धर्मानुयायी 'अर्हत्' और मीमांसक जिनकी 'कर्म'रूप से उपासना करते हैं, वे तीन लोकों के नाथ ये हरि ही हैं, वे आपको इच्छित फल प्रदान करें ॥ ३७ ॥

हे राजन्, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि विष्णु के नाम-संकीर्तन में न कोई देश का नियम है और न तो काल का ही कोई नियम है। अर्थात् किसी भी स्थान पर, किसी भी समय भगवान के नाम को गाया जा सकता है ॥ ३८ ॥

हे पृथ्वीपति! यज्ञ में, दान में काल का विचार है और स्नान तथा जप में भी समय का विचार है, लेकिन इस लोक में विष्णु का नाम गाने में कोई भी काल बाधक नहीं है ॥ ३९ ॥

यमराज की नगरी निश्चय ही निकट दिखाई देती है, इसलिये शिव का स्मरण कर, शिव का ध्यान कर, सदा शिव का चिन्तन कर ॥ ४० ॥

मै शिव हूँ, यह शिव है और तुम भी शिव ही हो, सब कुछ शिवमय है, शिव से परे कुछ नहीं है ॥ ४१ ॥

जो परमात्मा सूक्ष्म से भी सूक्ष्म हैं, जो सब की हृदयगुहा के भीतर स्थित हैं, जो अखिल विश्व की रचना करते हैं तथा स्वयं विश्वरूप होकर अनेक रूप धारण करते हैं, जो समस्त जगत को सब ओर से घेरे हुए हैं, उन एक परशिव को जानकर मनुष्य नित्य और असीम शान्ति को प्राप्त कर लेता है ॥ ४२ ॥

मैं सर्वत्र गमनशील, सर्व के कर्ता, स्वयं सब कुछ, सर्व के प्रकाशक, सर्व के आधार, शान्त, पूर्ण शिव को भजता हूँ ॥ ४३ ॥

सृष्टि के आदिकाल में भगवान ब्रह्मा ने इनकी उपासना करके सृष्टि रचने की सामर्थ्य प्राप्त की और इच्छित फलों को प्राप्त कर हृदय में संतुष्ट हो गये। धन्य है, वह विधाता ही उपास्य और उपासक बनता है ॥ ४४ ॥

जिसके हृदय में सनातन, अनादि, अनन्त विग्रहरूप शंकर सदा निवास करते हैं, उसका कुल पवित्र हो गया है, उसके पितरों का उद्धार हो गया है, उससे यह पृथ्वी और ब्राह्मण पवित्र हो गये हैं ॥ ४५ ॥